गोधड़ी : डॉ. सुनील जाधव

जन्म : 01 सितम्बर, 1978

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी) नेट, पीएच.डी.

कृतियाँ-कविता : 'मैं बंजारा हूँ', 'रोशनी की ओर बढ़ते कदम' 'सच बोलने की सजा' 'त्रिधारा' 'मेरे भीतर मैं'। कहानी : 'मैं भी इन्सान हूँ' 'एक कहानी ऐसी भी' शोध : 'नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य' 'हिंदी साहित्य विविध आयाम' 'हिंदी साहित्य रूदलित विमर्श' अनुवाद : 'सच का एक टुकड़ा' नाटक, एकांकीः 'भ्रूण (कन्नड़ तथा मराठी में अनुवाद) संशोधन : 'नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य का अनुशीलन' पर 'विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में लगभग पचास आलेख प्रकाशित'।

विभिन्न राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में आलेख, कविता, कहानियाँ प्रकाशित : 'सृजन गाथा', 'नव्या', 'विश्वगाथा', 'प्रवासी दुनिया', 'प्रयास', 'रचनाकार', 'पुरवाई', 'रूबरू', 'हिंदी चेतना', 'अम्स्टेल गंगा', 'सत्य दर्शन', 'साहित्य सरिता', 'आर्य संदेश', 'नव निकष', 'नव प्रवाह', '15 डेज', 'अधिकार', 'रिसर्च लिंक', 'शोध समीक्षा एवं मूल्यांकन', 'संचारिका', 'स्त्री काल', 'विश्व हिंदी पत्रिका', 'हिंदी साहित्य आकादमी शोध पत्रिका', 'केरल, आधुनिक साहित्य', 'साहित्य रागिनी', 'खबर प्लस', 'हिचकी', 'जनकृति', 'आक्रोश', 'जय विजय', 'भारत दर्शन', 'दैनिक भास्कर', 'दैनिक क्रांति', 'रेडियो सबरंग' आदि।

अलंकरण एवं पुरस्कार : 'अंतर्राष्ट्रीय सृजन श्री पुरस्कार (ताशकंद), 'अंतर्राष्ट्रीय सृजन श्री पुरस्कार' (दुबई) 'भाषा रत्न (दिल्ली)' 'अंतर्राष्ट्रीय प्रमोद वर्मा सम्मान (कम्बोडिया), 'विश्व हिंदी सचिवालय, मोरिशियस द्वारा कविता का अंतर्राष्ट्रीय प्रथम पुरस्कार, 'राष्ट्र भाषा गौरव' इलाहाबाद, कैंची और बन्दूक एकांकी को विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरिशस द्वारा 2017 का तृतीय अंतराष्ट्रीय पुरस्कार।

विदेश यात्रा : उज्बेक (रशिया), यू.ए.इ, वियतनाम, कम्बोडिया, थाईलैंड।

काव्य वाचन : 1. अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन, ताशकंद 2. अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन, दुबई 3. विश्व कवि सम्मेलन कैनेडा 4. अंतर्राष्ट्रीय कवि सम्मेलन, कम्बोडिया 5. हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, मुंबई 6. आकाशवाणी, नांदेड, कैंची और बन्दूक, अमरबेल एकांकी आकाशवाणी पर प्रस्तुति।

सम्पादक : 1. नव साहित्यकार वेब पत्रिका, www.navsahitykar.com 2. शोध-ऋतु (International ISSN Journal) आकाशवाणी पर मुलाकात तथा 'भ्रूण' एकांकी की प्रस्तुति एवं अभिनय। शॉर्ट फ़िल्म : 'फ्रेंड फोरेवर' में अभिनय। अध्यक्ष : जय सेवालाल सामाजिक, संस्कृति, बहुउद्देशीय विकास प्रतिष्ठान, नांदेड।

सम्प्रति : हिंदी विभाग, यशवंत कॉलेज, नांदेड

सम्पर्क : महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गड कमान के सामने, नांदेड, महाराष्ट्र-05

मो.: + 91 9405384672, ई-मेल : suniljadhavheronu10@gmail.com,

ब्लॉग : navsahitykar.blogspot.com
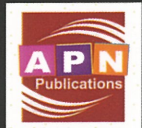
APN Publications

WZ-87 A Street No. 4, Hastsal Road
Uttam Nagar, New Delhi-110059
Contact : +91-9310672443, 8766370387
Email:apnlanggraph@gmail.com
Web.: www.bookpublishersindelhi.com

₹ 250/-

ISBN 9789385296833

गोधड़ी

डॉ. सुनील जाधव

कहानी संग्रह

गोधड़ी

डॉ. सुनील जाधव

गोधड़ी

डॉ. सुनील जाधव

एपीएन पब्लिकेशन्स
APN PUBLICATIONS

गोधड़ी (कहानी संग्रह)

ISBN No. : 978-93-85296-83-3

प्रकाशक

एपीएन पब्लिकेशन्स
(एपीएन लैंग्वेज एंड ग्राफिक्स
सर्विसेज प्रा. लि. की इकाई)
डब्ल्यू जेड-87 ए, गली नं.-4,
हस्तसाल रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
संपर्क : 9310672443, 8766370387
mail : transmartindiamail@gmail.com

आवरण : एपीएन
लेजर कम्पोजिंग : एपीएन
प्रथम संस्करण : 2019
वाद क्षेत्र : दिल्ली
मूल्य : 250.00/-
मुद्रक : रिलाइबल इंफोमीडिया

Godhri (Collection of Stories)
By : Dr. Sunil Jadav
First Edition : 2019
Published By : APN Publications, Uttam Nagar, Delhi-59
Price : 250.00/–

अनुक्रम

संर्घष की जमीन

डॉ. सुनील जाधव जमीन से जुड़े रचनाकार हैं। इनकी कहानियों की रचना जमीन से जुड़े रहने का परिणाम है। डॉ. जाधव जमीन की बात जमीन की शब्दावली में लोक की शब्दावली में, आँचलिक शब्दों की सोंधी खुशबू के साथ कहानियों में परोसते चलते हैं। हमारा देश बहुत विशाल है। विशाल भूखंड, विशाल जनसंख्या के बीच विभिन्न भाषा-भाषी समाज इस देश की पहचान है। भारत के उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम की अपनी विशिष्ट पहचान रही है। इस पहचान का कारण भाषा, वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन, पर्व-त्योहार, परंपराएँ, संस्कार आदि हैं। डॉ. जाधव भारतवर्ष के महाराष्ट्र से अपने जनसमाज की गतिविधियों का बड़ी ही तन्मयता से जीते हुए रचनात्मकता में ढालने की सफल कोशिश कर रहे हैं। साहित्य का एक अध्येता होने के नाते कहें अथवा साहित्यप्रेमी होने के नाते कहें—जनसमाज की गतिविधियों को कहानी में ढालकर हिंदी के विशाल पाठक समुदाय को इनसे परिचित कराने की एक छोटी ही परंतु महत्वपूर्ण कोशिश के रूप में इस कहानी संग्रह का स्वागत किया जाना चाहिए।

यह कहानी संग्रह एक समाज विशेष के जीवन संघर्षों से हम सबका साक्षात्कार कराता है। इस संग्रह में कहने को मात्र ग्यारह कहानियाँ हैं किंतु इनमें अपने समय का पूरा सामाजिक यथार्थ कहानीकार ने प्रस्तुत कर दिया है। लोक की कथा में जब लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो लोकभाषा जो लोककथा की ताकत होती है, ही कभी-कभी अभिव्यक्ति संप्रेशण के स्तर पर इसकी सीमा के रूप में भी चिह्नित की जाती है। बावजूद इसके लोकभाषा का अपना एक अलग ही आनंद होता है।

इन कहानियों में पाठकों को एक-एक वाक्य की 'थीम लाइन' मिलेगी। इन 'थीम लाइनों' को पढ़कर आपको हिंदी कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की याद अवश्य

आएगी। पहली ही कहानी 'गोधड़ी' की आखिरी पंक्ति दृष्टव्य है—"बेटा! बंजारा स्वाभिमानी और परिश्रमी होते हैं।" इस कहानी संग्रह को पढ़ते हुए आपको संघर्षशील समाज और लेखकीय सरोकारों की ठसक से अच्छी तरह साक्षात्कार होगा। इसी कहानी (गोधड़ी) के आरंभ में जिस समाज का चित्रण किया गया है उसे पढ़ने के बाद आप समझ सकते हैं कि कहानीकार की कथा भूमि क्या है, कहाँ है। सारजाबाई औरत का एक जो बहन-भाई हैं की माँ की मृत्यु के उपरांत उसकी संघर्षगाथा को कहानीकार इन शब्दों में प्रकट करता है—"माँ जंगल से सूखी लकड़ियाँ, गोंद इकट्ठा कर शहर जाकर बेच आती थी जिससे झोपड़े में अनाज आता था...सबके पेट की आग को शांत किया जाता था वह बड़ी कर्मठ परिश्रमी स्त्री थी। अपने पति के देह त्याग के बाद उसने ही घर की सारी जिम्मेदारी सँभाल ली थी। घर में एक ही रोटी बनती थी वह भी बाजरे की... ।"

सात सदस्यों के परिवार में एक रोटी, वह भी बाजरे की। जी हाँ, यह स्मरण रहे कि यह हमारे ही समाज की सच्चाई है कोई अतिरेक नहीं। जब हम और आप इन कहानियों को पढ़ते हुए उसमें डुब रहे होंगे तब भी उसी संघर्ष को जी रहे होंगे। फिर भी उस समाज की हकीकत यह है कि "सभी ने सीख लिया था। एक रोटी में पेट भर खाना भूख को कभी अहसास न दिलाना कि उसके बिना हम नहीं जी सकते।" संघर्षों की इस जमीन का यथार्थ यह है कि—"यहाँ हर रोज भूख से जंग होती थी। कोई हारता तो कोई जीतता था। हार और जीत को जीत ही मानने के बाद उनके पास कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं था। एक रोटी में सात लोग खाते थे। कई बार पानी में घोले हुए सत्तू को पीकर दिन निकालने पड़े थे।" जब जीवन 'दिन निकालने' का पर्याय बन जाये तो 'गोधड़ी' और ऐसी अनेक कहानियों की रचना की जमीन तैयार होती है। डॉ. जाधव इसी जमीन पर बड़ी दृढ़ता से खड़े हैं और उस समाज का नग्न यथार्थ हमारी आँखों के सामने रख रहे हैं। इस अदम्य साहस और जिजीविका का मैं अभिनंदन करता हूँ। इस संग्रह की कहानियाँ जीवन की ऐसी-ऐसी सच्चाइयों से रू-ब-रू कराती हैं जिन्हें पढ़ते हुए पाठकों की आँखें हैरत से फटी रह जाएँगी। इस दृष्टि से इस संग्रह के प्रकाशन के लिए एक लेखक निश्चय ही बधाई का हकदार है। मैं संग्रह की कहानियों को पढ़ते हुए भरे मन से उन्हें बधाई देता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि भविष्य में भी वे इसी तरह हिंदी के विशाल पाठक समाज को समाज की सच्चाइयों से, संघर्षों से इसी तेवर के साथ परिचित कराते रहेंगे।

हमारे समाज की जो विसंगतियाँ हैं उसे कहानीकार ने बहुत करीब से देखा, भोगा और जिया है। अनुभव के समुद्र से मंथन के उपरांत जो कुछ भी उसने हासिल किया है। वह अपने पाठक समाज के लिए इनकी कहानियों में प्रस्तुत कर दिया

है। अनुभव सागर से प्राप्त इस सामग्री में क्या कुछ ग्राहय और क्या कुछ त्याज्य, इसका फैसला पाठक ही करें तो बेहतर है। अतः इस मुद्दे पर मेरी टिप्पणी अनावश्यक है। परंतु इतना अवश्य कहूँगा कि समाज में जो वह कैसा है और उसे क्यों ऐसा ही रहना चाहिए। इन सवालों से आपको ये कहानियाँ अवश्य जूझने पर मजबूर करेंगी जो है उससे बेहतर की तलाश की भूख जगाती इन कहानियों की सार्थकता यही है कि समाज से मिले अपमान, जलालत भरे जीवन की अनुभूति की अभिव्यक्ति इससे बेहतर नहीं हो सकती।

'मैं बंजारे का छोरा' कहानी में अस्पृश्यता से उपजे दर्द को कहानी में प्रकार पिरोया गया है कि इसे पढ़ते हुए सहृदय पाठक की आँखें बार-बार नम हो जाती हैं। कहानी का आरंभ ही पाठकों को आकर्षित करता है—"उस दिन मुझे अहसास हुआ अछूत होने का दर्द क्या होता है। दलित, आदिवासी न जाने कब से इस दर्द को सहते आ रहे हैं। उनके शरीर और मन ने कितनी यातनायें, पीड़ाओं को सहा है।" ये यातना, पीड़ा, संघर्ष ही सृजनशील की आधार भूमि के रूप में दृष्टिगत होता है। डॉ. जाधव संघर्ष की जमीन के रचनाकार हैं। हमें संघर्ष को जीवन का पर्याय बनाने वाले ऐसे कहानीकार पर गर्व होता है।

इस संग्रह की कहानियाँ आपको लोकभाषा की खुशबू के साथ-साथ मानव धर्म का भी स्मरण कराएँगी। एक तरफ यदि लोक की भाषा का आनंद है तो दूसरी तरफ युवा मन की कथा के रूप में 'मिस्टेक' कहानी आपको एक अलग ही दुनिया में ले जाएगी। यहाँ भी संघर्ष है किंतु यह संघर्ष अन्य कहानियों के संघर्ष से थोड़ा अलग है। मुझे उम्मीद है कि हमारे समाज की विसंगतियों का साक्षात्कार करती इन कहानियों को पाठक वर्ग खुले मन से स्वीकार करेगा और यह संग्रह कहीं-न-कहीं हर संघर्षशील पाठक का अपने जीवन संघर्ष की कथा-सा प्रतीत होगा। इस कहानी संग्रह के लिए डॉ. जाधव को इस उम्मीद के साथ अशेष शुभकामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ कि उनकी कलम से हमें आगे की एक से बढ़कर एक रचनाएँ पढ़ने को मिलती रहेंगी।

— लालित्य ललित

गोधड़ी

'याड़ी ये या...शे सोबत ले जायवाळ छी कांई यें? उपर जातानी येन ओढ़ेवाल छी कांई ये या...? तार चिता सोबत ई गोधड़ी भी बळ जायवाळ छ। मार भिया सारु गोधड़ी दे जो याड़ी...। कांई तोई बोल या...आखरी रो बोल द या...अब तू हमनेन कत दकायवाल छी या...ये याड़ी...। हमनेन छोड़न मत जो ये याड़ी...।''

'याड़ी ये या...सब कुछ साथ में ले जाएगी क्या? ऊपर जाकर इसे ओढ़ेगी क्या या...? तेरी चिता के साथ ये गोधड़ियाँ भी जल जाएँगी। मेरे भाई के लिए गोधड़ियाँ दे जा याड़ी...। कुछ तो बोल या...आखरी का बोल दे या...अब तू हमें कहाँ दिखने वाली है या...ये याड़ी। हमें छोड़ कर मत जा याडी...।''

सारजाबाई पछाड़ खाकर रो रही थी। उसकी माँ ने कल दोपहर को अंतिम साँसें ली थीं। उसने अस्सी साल का लम्बा सफर तय किया था। वह जहाँ से आई थी, वहीं लौट गई थी। सारजा और उसका छोटा भाई तुकाराम का कल से रो-रो कर बुरा हाल था। रात भर उनकी आँखें सो न पाई थीं। रात भर जागने से आँखें लाल सुर्ख हो गई थीं उनकी आँखों और यादों में याड़ी का चलचित्र बसा था। बचपन में जब तुकाराम भूख से रोता था, उसकी माँ जंगल से सुखी लकड़ियाँ, गोंद इकट्ठा कर; शहर जाकर बेच आती थी जिससे झोपड़े में अनाज आता था। तुकाराम के साथ सबके पेट की आग को शांत किया जाता था। वह बड़ी कर्मठ और परिश्रमी स्त्री थी। अपने पति के देहत्याग के बाद उसने ही घर की सारी जिम्मेदारी सम्भाल ली थी। घर में एक ही रोटी बनती थी वह भी बाजरे की...हाँ, बाजरे की ही...। एक रोटी में परिवार के सात सदस्यों का पेट भरना मुश्किल था। उनके झोपड़े में उस रोटी का आगमन भी बड़ी कठिनाई से ही होता था। सभी ने सीख लिया था एक रोटी में पेट भर खाना। भूख को कभी अहसास न दिलाना कि उसके बिना हम नहीं जी सकते। अक्सर भूख बाहें फैलाये अपने पाश में जकड़ने के लिए तैयार रहती थी। यहाँ हर रोज भूख से

जंग होती थी कोई हारता तो कोई जीतता था। हार और जीत को जीत ही मानने के सिवाय उनके पास और कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं था। एक रोटी में सात लोग खाते थे कई बार पानी में घोले हुए सत्तू को पीकर दिन निकालने पड़े थे।

सारजाबाई को अपनी याड़ी का स्नेह और प्रेम याद आ रहा था। जब भी वह बचपन में डर जाती, तो उसे अपनी याड़ी के गोद में सुकून मिलता था। वह अपने आप को सुरक्षित महसूस करती थी मानो डर की हिम्मत ही नहीं होती थी कि याड़ी के गोद में सोई सारजा को वह डराये। डर याड़ी से डरता था सारजा का डर उड़न छू हो जाता था। एक बार जब सारजा को भूख लग रही थी, झोपड़े में अनाज का एक दाना भी नहीं था जिससे भूख को पराजित किया जा सके, याड़ी ने अपनी फटी हुई टुकरी (ओढ़नी) के कोने में जो रोटी का एक टुकड़ा कसकर बाँधा हुआ था उसी में से आधा टुकड़ा सारजा को दिया था। उस दिन उसने मुस्कुराते हुए बड़े मजे से पत्थर की तरह मजबूत रोटी के टुकड़े को कड़-कड़ की आवाज करते हुए खाया था। वह पत्थर का टुकड़ा भी उसे बड़ा स्वादिष्ट लग रहा था बड़ी मुश्किल से अकाल में मिले पानी को उसने पेट भर पीया था। उस समय उसका पेट था ही कितना..गिनके एक बालिश। जब भूख भयानक लगती है, तब किसी भी प्रकार का भोजन स्वादिष्ट लगता ही है। या यूँ कहूँ कि भोजन स्वादिष्ट नहीं होता बल्कि भूख भोजन को स्वादिष्ट बना देती है।

उसकी याड़ी को वह रोटी का टुकड़ा शहर से मिला था। वह सूखे पड़े जंगल से तड़के ही एक-एक कर इकट्ठा किये गए लकड़ी के गट्ठर को सिर पर धरे बेचने के लिए शहर गई थी। तांडे से शहर दस किलो मीटर का फासला तय करके उसने एक आने में वह गट्ठर बेचा था। जब वह गट्ठर बेचकर लौट रही थी, तब उसने देखा कि एक पक्षी अपने छोटे से मुँह में रोटी का टुकड़ा दबाकर सुस्त-सा दौड़ रहा था। मानो वह टुकड़ा उससे भी भारी था, न जाने उसे उस टुकड़े के लिए क्या-क्या परिश्रम करने पड़े होंगे। न जाने किसके घर से उसने और कैसे वह रोटी की का टुकड़ा प्राप्त किया था। भूख की व्याकुलता से प्राप्त उस रोटी के टुकड़े से सम्भवतः वह बहुत प्रसन्न था। उस भीषण अकाल में वह रोटी का टुकड़ा याड़ी की आँखों को ललचाने के लिए काफी था। उसके पीठ से चिपटे पेट में भी भूख से व्याकुल चूहे दौड़ लगा-लगा के भीतर शांत पड़े हुए थे। उस टुकड़े ने उनमें उम्मीद की किरन को जगाया था। सूखे हुए पेट और जबान ने तुरंत प्रतिक्रिया दी, न जाने कैसे जबान ने लार टपकाये थे। कैसे कहाँ से उसमें शक्ति आ गई थी। उसके मुँह से पानी छुट रहा था। याड़ी उस दिन बहुत भूखी थी, भूख से पेट में चूहों ने दौड़ लगाना आरम्भ कर दिया था। उसे और उसके परिवार को अपने जीवन में शादी-ब्याह के मौके पर ही भर पेट भोजन मिलता था। बाकि समय सत्तू, कुछ रोटी के टुकड़े, चने या सीताफल

से काम चलाना पड़ता था। वे जी रहे थे, उस दिन याड़ी पक्षी के मुँह में दबे टुकड़े को देर तक ताकते हुए वहाँ खड़ी थी। उसने अपनी फटी हुई टुकरी का कोना मुँह पर ढ़ाक लिया था, वह टुकरी के कोने से अपनी लज्जा को छिपा रही थी। वह टुकरी क्या थी, भूख, दरिद्रता, लाचारी का पर्दा बनी हुई थी उसके सूखे और पतले से गर्दन को लार निगलते हुए साफ-साफ देखा जा सकता था। प्रत्येक लार के साथ वह आभासी रोटी का टुकड़ा निगल रही थी। जितनी बार निगलती भूख उतनी ही तीव्र गति से बढ़ती जाती थी।

पक्षी सड़क के किनारे जाकर रुक गया था। उसमें अब न जाने क्यों कोई हलचल नहीं दिखाई दे रही थी। पक्षी निचेष्ट पड़ा रहा था, याड़ी कुछ देर उसे इसी अवस्था में देख रही थी, जब उसने देखा की उसकी कोई हरकत नहीं हो रही है, तब उसने ईधर-उधर देखा और वह पक्षी की ओरं लपक गई। पक्षी सूर्य की तीव्रता को सह नहीं पाया था, अब वह निचेष्ट हो चुका था। उस समय ऐसे लग रहा था कि याड़ी की इच्छा पूरी करने के लिए उसने अपना बलिदान दे दिया हो पक्षी कैसे मरा? क्यों मरा? उस ओर ध्यान न देकर उसने अपना दायाँ हाथ आगे बढ़ाया और उसके मुख से नीचे गिरा हुआ रोटी का वह सुखा टुकड़ा झट से उठा लिया और अपनी टुकरी के कोने में कसकर बाँध लिया। उसमें अजीब-सी प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी थी और घबरा भी रही थी कि उसे इस अवस्था में कोई देख न ले...। देख लेते तो लोग न जाने क्या-क्या कहते। याड़ी के माथे से पसीने की बूँदें गालों से लुढ़कते हुए गले का स्पर्श कर रही थी। शायद वह पसीने की बूँदें गले को ठंडक पहुँचा रहे हो। जैसे ही पसीने की बूँदों ने गले का स्पर्श किया था। उसके स्पर्श की ठंडक से उसने अपनी पलकें कुछ समय के लिए मूँद ली थी। वह भीषण गर्मी में स्पर्श से सुकून पा रही थी। उसने पलकें खोली ईधर-उधर देखा और अपने कदम आगे बढ़ा दिए। वह जब तक गली पार न कर गई, तब तक मुड़-मुड़ कर देखती रही। कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है। वह उस टुकड़े के लिए इतनी भयभीत थी कि मानो वह रोटी का टुकड़ा न हो कोई गहने की पोटली मिल गई हो, हो न क्यों! उस समय वह परिक्षेत्र अकाल की भीषणता से जूझ रहा था। वह 1972 का अकाल था। लोग उसे याद कर के आज भी काँप जाते हैं। तांडो के हर झोपड़े, मकानों में अकाल से जुड़ी हुई लम्बी कहानियाँ थी। ऐसे में वह टुकड़ा गहने के पोटली से भी कीमती ही तो था। याड़ी चाहती तो वह उस टुकड़े को खाकर अपनी भूख मिटा सकती थी, पर उसने ऐसे नहीं किया था। उसने मानो भूख को भी टुकरी में बाँध दिया था।

तांडे के नायक ने पास ही के गाँव से बढ़ई को डोली बनाने के लिए बुलाया था। प्राणत्याग चुके याड़ी के पार्थिव शरीर के लिए लकड़ी की डोली बनाई गई थी, तांडे के लोगों ने उसे खूब सजाया था। तुकाराम और सारजाबाई की याड़ी को अंतिम

स्नान कर नए वस्त्र परिधान करवाये गए थे। उसे डोली में बिठा दिया गया था। याड़ी के साथ उसके सामान को भी डोली में रखा जा रहा था। एक पुराने कपड़े की पोटली में उसकी कुछ गोधडियाँ, घागरा-चोली रखे गए थे, गोधडियाँ, घागरा-चोली समय-समय पर उसके नाती-पोतो ने और बेटों ने बनवाया था। उसकी पूँजी इतनी ही थी, इक दो चूड़िया और बस...। तुकाराम ने डोली में रखी हुई पोटली खोलकर देखी और उसकी गोधडियों पर से हाथ घुमाते हुए फुट-फुट कर रोने लगा था। माँ को खोने का दुःख तो उसे था ही पर वह अब दोहरे दुःख से रो रहा था। रातभर जागने और रोते रहने के कारण उसकी आँखें भीतर तक धस गई थी। उसकी आँखों के इर्दगिर्द काले निशान पड़ गए थे, उसका चेहरा सुख गया था सारजा भी पास में ही बैठी फूट रही थी। किसी ने खुली हुई पोटली को देख उसे बाँधने के लिए आगे हाथ बढ़ाया ही था कि तुकाराम से रहा नहीं गया और वह बोल उठा, 'येन रेद भिया, म ओढ़ लू चूं। अब घण शी पड़ेवाळ छ। अंगाडयाच झुपडा माइं गोधडीर कमी छ। म सारीरात बना गोधडीर सोऊँचू। दोई टाँगे वळान सोतान बचाऊँचू।"

'इसे रहने दो भाई, मैं ओढ़ लेता हूँ। अब ठण्ड पड़ने वाली है। पहले ही घर में गोधडियों की कमी है मैं रातभर बिना गोधडियों के सोता हूँ। अपने आप को दोनों टाँगों में डालकर बचता हूँ।"

तुकाराम मैली धोती और फटी हुई बनियान पहने हुए था, वह पीछे एक धनी किसान के यहाँ एक साल वाया (नौकर) रहा था। तुकाराम की ईमानदारी और परिश्रम से खुश होकर उसके मालिक ने उसे धोती-कुर्ता और बनियान उपहार स्वरूप दिया था। उस दिन वह बहुत खुश था उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था। नये कपड़े पहन कर वह तांडे में घूम रहा था। उन कपड़ों में वह भी कोई धनिक किसान की भाँति दिखाई दे रहा था। सभी ने उसकी जमकर तारीफ की थी।

"भा तुकाराम तू नायकेनया दिकारोची। तार तो आज ठाठ छ भा ठाठ।"

वह भी उन दिनों सातवें आसमान में रहा था। उन कपड़ों ने उसके जीवन में खुशियाँ भर दी थीं पर अब वह कपड़े समय के साथ पुराने हो गये थे उसे बदलने का समय आ चुका था। जैसे शरीर पुराना हो जाता है तो आत्मा नया शरीर धारण करती है, वैसे ही उसी याड़ी ने अब नया शरीर धारण करना था। वह नया शरीर धारण करने के लिए जा चुकी थी।

तुकाराम की याड़ी और बापू ने अपने समय में भागकर प्रेम विवाह किया था। बापू काले थे और याड़ी गोरी। याड़ी अपने समय में तांडे में सबसे खूबसूरत थी। तांडे का हर छोरा उससे विवाह करना चाहता था पर उसका दिल तो तुकाराम के बापू पर आया था। तुकाराम के बापू का शरीर हट्टा-कट्टा और पुष्ठ था उनका शरीर मेहनती था। उनके देह से मिट्टी और पसीने से मिश्रित खुशबू आती थी। वह देहाती परिश्रमी

शरीर था। इतना ही नहीं तो वे बातूनी थे कोई भी उनकी बातों से मोहित हो जाया करता था। वे तांडे की गोपियों में कृष्ण की भूमिका निभा रहे थे। गीत-नृत्य में उनका कोई सानी नहीं था। सारा तांडा उनका कायल था पर दोनों के प्रेम में अमीरी और गरीबी आड़े आ गई थी। याड़ी साधारण सम्पन्न परिवार से थी तो बापू झोपड़े में रहने वाला दरिद्र परिवार से था। यही कारण था कि याड़ी के परिवार को यह सब पसंद नहीं था। उन्हें दोनों का रिश्ता पसंद नहीं था। उन्होंने याड़ी पर बापू से मिलने की पाबंदी लगा दी थी पर सच्चे प्रेम करने वालों को कौन रोक सकता था। वे तो हवा थे जिसे कोई भी नहीं रोक सकता था। उन्होंने भागकर विवाह करने का निर्णय ले लिया था। एक दिन उन्होंने मुँह अँधेरे अपना घर, तांडा छोड़ कर विवाह कर लिया था। पहाड़ों के बीचों-बीच बसे दस-पन्द्रह झोपड़ियों के तांडे में आकर बस गये थे। याड़ी अच्छे घर से होने के कारण थोड़ा-सा धन चुरा लाई थी।

तुकाराम के नाना लदेनियाँ का कार्म करते थे। गेरू, खोया, नमक आदि घोड़े और बैलगाड़ी में लादकर देश-विदेश के कई भागों में बेच आया करते थे। वे और उनके जैसे कई बंजारे भारत के हर कोने-कोने में व्यापार के लिए जाया करते थे। इतना ही नहीं विदेशों में भी उनका आना-जाना रहता था। आगे चलकर अंग्रेजों के आने से ट्रेन शुरू हो गई थी इस कारण बंजारा का व्यापार लगभग बंद हो गया था। उन पर भूखे मरने का समय आ गया था। आधुनिकता ने उनसे उनका रोजगार छीन लिया गया था। ऐसे में कई लोग जंगलों पहाड़ों में तांडा करके बस गये। वहीं उन्होंने खेत बनाये उनकी उपजीविका आरम्भ हुई पर सब इतने खुश नसीब नहीं थे। बापू का ससुर तांडे के अन्य परिवारों से तनिक धनिक था।

तुकाराम की याड़ी और बापू ने विपरीत परिस्थितियों का सामना किया था। याड़ी ने अपने प्रेम के लिए अपनी सुख-सुविधा पूर्ण जीवन को त्यागा था। वह चाहती तो किसी अच्छे घर जा सकती थी पर उसने बापू को ही चुना था। जब घर से चुरा कर लाया हुआ धन समाप्त हो चुका था, तब उन्हें जंगल पर निर्भर रहना पड़ा था। जंगली फल-मूली आदि को खा कर जीवन चलाना पड़ा था। कभी गौंद इकट्ठा होता तो कभी मौसम में कच्चे सीताफल भुन कर खाया जाता था। दिन बीत रहे थे उपजीविका का उपयुक्त साधन जुटाना था। उन्होंने तांडे से कुछ दूर पहाड़ी की पत्थरीली तलहटी कंकड़-पत्थर साफ कर खेत के योग्य जमीन बनाई थी। जंगलों से तोड़ी गई लकड़ी से हल बनाया गया था। याड़ी और बापू बैलों के स्थान पर जुत गये थे भूखे रह कर उन्होंने भूमि को उपजाऊ बनाया था। खेत में बीज की आवश्यकता थी दोनों एक धनिक किसान के घर सालाना नौकरी कर ली थी। जिसे तांडे में 'साले ती बायाँ रेनो' कहते हैं यही कारण था कि बापू के माँगने पर कुछ मुठ्ठी भर बाजरे के दाने मिल पाये थे। उन्हीं दानों को उन्होंने अपने खून-पसीने से

सींचा था। नतीजतन दोनों में से खुशियों के अंकुरों ने जन्म लिया था। पहली बार जब बापू और याड़ी ने अपनी मेहनत से उपजे अंकुर को देखा तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा था। बापू ने खुशी में याड़ी को गले लगाते हुआ कहा था—"नीलू देकरीची। इ आपण खेत छ। आपण बोराये जकोण दाना माइंती अंकुर फुटरेच। देकते-देकते ये वद जाय वाल। जना म तोंन कशेर भी कमी कोणी पड़े देये वाल। आपण अपने मेह्नेतेती पक्को झुपाडा बनावां।"

"नीलू, देख रही हो, ये अपना खेत है। अपने खेत में बोये दाने से अंकुर आ गये हैं। देखते-देखते ये बड़े हो जाएँगे, तब मैं तुझे किसी बात की कमी नहीं होने दूँगा। हम अपने परिश्रम से पक्का झोपड़ा बनाएँगे।"

उसके आँखों से खुशी के आँसू निकल रहे थे। याड़ी भी कहाँ पीछे रहने वाली थी दोनों ने खुशियों की नदियाँ बहा दी थीं उन्होंने अपने बच्चों जैसा खेतों का ख़याल रखा था। खेत अब लहलहाने लगे थे बाजरा मुस्कुरा रहा था पर फसल कटाई से पहले जंगली जानवरों का डर था कहीं वे रात में आकर पूरी फसल न बरबाद कर दे। इसीलिए वे रात भर खेत में जागा करते थे। याड़ी को जंगली जानवरों से डर लगता था पर बापू के कारण वह सुरक्षित महसूस करती थी। कई बार जानवरों से सामना हुआ जख्मी भी होना पड़ा था। एक बार एक चीते से उनका सामना हो गया था उसने बापू पर हमला कर दिया था। चीते ने बापू के पैर का माँस काट लिया था वहाँ से खून बह रहा था। उधर याड़ी बुरी तरह से डर गई थी उस समय बापू निहत्था था फिर भी बापू ने दोनों हाथों से उसके मुँह को पकड़ा और एक झटके में उसके मुँह को चीर दिया, चीता आवाज भी न कर पाया था। घायल अवस्था में उनका वह रूप याड़ी के मस्तिष्क पटल पर अंकित हो गया था। वह दिन याड़ी को हमेशा याद रहने वाला था दोनों ने हाथ के फोड़े जैसे खेतों की देखभाल की थी। इसका पुरस्कार प्रकृति ने उन्हें दिया था। अनाज उनके झोपड़े में समा नहीं रहा था। वर्षा पर निर्भर पथरीले खेत ने उनका साथ दिया था। उस साल बारिश भी खूब हुई थी। प्रकृति ने उनकी मेहनत का साथ दिया था। उन्होंने भी प्रकृति का हृदय से आभार माना था।

उन्होंने तीन एकड़ जमीन बना ली थी उन्हें तीन लड़के और एक लड़की हुई थी। चारों नन्हें बालक अपने याड़ी और बापू का हाथ बँटाते थे तुकाराम उसी में से एक था। समय गुजरता गया अभी सुख भरे दिन आये ही नहीं थे कि काल ने अपना रोद्र रूप दिखा दिया था। उन्हें क्या पता था कि उनसे उनके बापू का साया काल द्वारा छीन लिया जाएगा एक दिन तुकाराम के पिता ने देह त्याग दिया था। चारों बालक बापू के अभाव में अनाथ हो चुके थे पर याड़ी ने घर की सारी जिम्मेदारी सम्हाल ली थी। बापू के देहत्याग के बाद तीनों भाई विभक्त होकर अलग-अलग तांडो में चले गये थे। सारजाबाई ब्याह के बाद ससूराल चली गई तुकाराम भी अपनी

जमीन बेच कर दूसरे तांडे में चला गया था। वह और उसकी पत्नी याड़ी-बापू जैसे गाँव के पाटिल के पास सालाना नौकर रहे थे। वहाँ उन्होंने कुछ धन जुटाया था बापू की बेची हुई जमीन और कमाई के रुपये मिलाकर उसने एक किसान से बारह एकड़ जमीन खरीदी थी खेत के मिल जाने से दोनों खुश थे। खेत में बाजरा और रुई की फसल बोई गई थी। फसल बुवाई के समय उसकी पत्नी गर्भ से थी उनकी पहली संतान का जन्म खेत में ही हुआ था। संतान को घर नहीं रख सकते थे इसीलिए वे उसे खेत में ले आते थे। कभी पीठ पर बाँधकर कर काम करना पड़ता था, तो कभी बबूल के टहनी पर रस्सी बाँधकर झोली बनायी जाती और उसमें उनका लाडला किलकारी भरता था। जब दोनों खेत में काम कर रहे होते तो वह जोर-जोर से रोता था। बच्चे की माँ की चोली दूध से भीग जाती थी। अपने हृदय की आवाज सुनकर बच्चे की माँ वैसे ही नंगे पैर दौड़ते हुए बच्चे के पास आती। उसके पैर में काँटा चुभ जाता फिर भी उसे पता नहीं चलता था। मिट्टी के लगने से खून अपने-आप रूक जाया करता था। जब तक वह अपने लाल को दूध न पीला दे, तब तक उसे अहसास न होता की उसके पैर में काँटा चुभा था और खून भी निकला था।

फसल अब काटने के लिए आ गई थी। झोपड़ी में अब खुशी का माहौल था। अचानक पता चला कि उनके खेतों पर जिसने जमीन बेचीं थी उसने फिर से कब्जा कर लिया है। तुकाराम अनपढ़ था उसने बिना लिखा-पढ़ी के ही रुपये दे दिए थे। तुकाराम के सारे परिश्रम पर पानी फिर चुका था उसके पैर से जमीन खिसक चुकी थी। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि उसके साथ ऐसा हो सकता है वह पूरी तरह बिखर गया था। भीतर से टूट चुका था उन्होंने अपना खेत पुनः प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया था पर उनके हाथ कुछ भी न लगा था। उन्होंने अपनी शक्ति के बल पर उसे वहाँ से खदेड़ दिया था। उनके पास मार खाकर पश्चाताप के सिवाय दूसरा कोई उपाय शेष नहीं था। उस समय तुकाराम को स्कूल न जाने पर पश्चाताप हो रहा था वह अपने-आप को कोस रहा था।

"म भी शाळा म जातो तो कतरा आचो वेतो। याड़ी मन कतराक वणा की ...बेटा शाळा माइं जो, म तोन शिकाऊँचूं। याड़ी वात सामल लेतो। पणन कोणी मानो। शिक लेतो...तो आज इ नोबत कोणी आती।"

"—काश, मैं भी स्कूल में जाता तो कितना अच्छा होता था। याड़ी ने कितनी बार कहा था, बेटा स्कूल जा, मैं तुझे पढ़ाऊँगी। याड़ी की बात मान लेता पर नहीं! पढ़-लिख लेता...तो आज ऐसी नौबत न आती।"

वह फुट-फुट कर रोने लगा था। तुकाराम घर की दरिद्रता के कारण स्कूल नहीं जा सका था। उसे पता था कि उसकी पढ़ाई नहीं हो पाएगी पर याड़ी ने स्कूल में जाने के लिए कहा था। वह मेहनत, मजदूरी कर, सालाना नौकर रहकर, गोंद-लकड़ियाँ

बेचकर उसे स्कूल भेजेगी। शिक्षा के अभाव ने, अज्ञान ने उसका एक पल में ही सबकुछ छीन लिया था।

खेत के सदमें से उसकी टांडरी (पत्नी) उभर न पाई थी। इसी में उसकी पत्नी परलोक सिधार गई। पत्नी के उपरांत उन पर एक के बाद एक संकट आन पड़े थे। बिन माँ के बच्चा तुकाराम की गोदी में अपनी याड़ी को ढूँढ़ रहा था। एक ओर उसे टांडरी की याद सता रही थी, तो दूसरी ओर अपनी याड़ी के लिए रोते बालक को संभालना था। वह खेत और तांडा उसे अपनी टांडरी याद दिलाता था उसका मन कहीं न लगता। उस सदमे से उभरने के लिए वह एक दिन तांडा छोड़ कर दूसरे तांडे अपने छोटे भाई के पास चला आया था। जहाँ उसकी याड़ी रहा करती थी। अब वह अपनी पत्नी की यादों से बहुत दूर आ चुका था फिर भी वह उसके यादों में जीवित थी। दूसरे टांडे का नायक बहुत अच्छा था उसने उसे रहने के लिए जमीन दी। वहीं उसने अपने जीवन की फिर से शुरुआत की थी। पत्थरीले जमीन में उसने फसल लहलहाई ही थी। फिर भी झोपडी में दरिद्रता ने अपना डेरा जमाया हुआ था।

एक दिन उसकी याड़ी ने भी उसका साथ छोड़ दिया था। सारजाबाई और उसके अन्य बेटे भी वहाँ पहुँच गये थे। वे सभी अनाथों की तरह रो रहे थे। डोली में उसकी याड़ी को बिठा दिया गया था पोटली भी साथ में रखी जा रही थी। तुकाराम गोधड़ी की पोटली को रखना नहीं चाहता था पर लोगों ने उसे डाँट दिया था।

"तोन कनाई गोधडी मळी कोणती काइं? जकोण याड़ीर गोधडी ले रो ची?"

"तुझे कभी गोधड़ी नहीं मिली है क्या? जो अपनी याड़ी की गोधड़ी ले रहा है।"

तुकाराम ने विह्वल होकर कहा था, "या...शे गोधडी सोबत झल्ले जायवाल छी काइं? हानू भी तम शे येन बोवाल च तो छो! येती आचो येन म रकाड लू चू। मन रात घण शी लागच। अब तो वरसालेती सार ज़मीन गिल वेगीच। वचाणे सारु भी तो चावच।"

"या...क्या ये सारी गोधडियाँ अपने साथ ले जाने वाली है क्या? आखिर तुम लोग इसे जलाने वाले ही तो हो! इससे अच्छा इसे मैं रख लेता हूँ। मुझे रात में बहुत ठण्ड लगती है, अब तो वर्षा से या जमीन भी गीली हो गई है बिछाने के लिए भी तो चाहिए न"

वह व्याकुल, मजबूर, विवश हो कर रो रहा था। दरिद्रता ऐसे समय भी उसकी परीक्षा ले रही थी। राम नाम सत्य के साथ उसके याड़ी की पालकी चल पढ़ी थी। जीवन भर याड़ी ने जिन लोगों को जोड़ा था आज वे सभी उनके अंतिम विदाई में आये थे। याड़ी ने सोना-चाँदी आदि तो नहीं पर लोगों को जोड़ने का धन कमाया था। याड़ी के पालकी के पीछे हजार लोग अलग-अलग टांडे से आये हुए थे। सभी के मुख से याड़ी का गुणगान हो रहा था। पालकी तांडा छोड़ कर चिता से आधे रास्ते

में पहुँची थी। पालखी पलटा कर कंधा बदला गया। पालकी कुछ पल के लिए नीचे रखी गई। टांडे के बुजुर्ग ने पालखी में रखी छोटी गेहूँ की पोटली बाहर निकाली और पालखी को आगे बढ़ने का आदेश देते हुए कहा, "लार वन मत देखो भा। आंग बढ़ जाओ।"

"पीछे मुड़ कर मत देखना अब आगे बढ़ना।"

फिर से "राम नाम सत्य" के साथ पालखी आगे बढ़ रही थी। बुजुर्ग ने गेहूँ की छोटी पोटली पास ही के खेत में जाकर छिपादी और वह भी पालखी के पीछे हो लिया था। पालखी श्मशान पहुँची और याड़ी का अंतिम दाह संस्कार किया गया। लोग वापस लौट रहे थे। तुकाराम ने छिपकर खेत से गेहूँ की छोटी पोटली उठाई और मैली धोती में छिपाते हुए अपने झोपड़े में पहुँच गया और टाटी का दरवाजा बंध कर लिया। उसने पोटली खोली और गेहूँ के दानों की ओर देखा कि एकाएक उसे याडी की आवाज सुनाई दी।

"बेटा, बंजारा स्वाभिमानी और परिश्रमी होते हैं!"

मैं बंजारे का छोरा

उस दिन मुझे अहसास हुआ था, अछूत होने का दर्द क्या होता हैं। दलित, आदिवासी न जाने कब से इस भयानक दर्द को सहते आ रहे हैं। उनके शरीर और मन ने कितनी यातनाएँ, पीड़ाओं को सहा है और आज भी सभ्य कहे जाने वाले समाज में वे असभ्यता का शिकार हो रहे हैं। मेरे भी साथ आज से 13 साल पहले अर्थात उ. प्र. 2000 में ऐसी ही एक घटना हुई थी जिससे मेरा मन बुरी तरह से आहत हो गया था। उस दिन मुझे भी लगा कि क्या मैं भी अछूत हूँ? मेरे मन में पुनः-पुनः एक ही प्रश्न उठ रहा था। क्या मैं भी अछूत हूँ? उस दिन मुझे बहुत बुरा लगा था। सारा दिन सोचता रहा मन को मसोसता रहा क्या मैं भी अछूत हूँ? उस दिन सारी रात सो न पाया था। करवटे बदलता रहा, सोचता रहा, आँखों से मानो नींद ही उड़ गई थी। जब नींद ही नहीं आ रही थी, तो टहलता रहा था ऐसा लग रहा था कि किसी ने मेरी शक्ति को छीन लिया है। अचानक उत्साही मन, हतोत्साहित हो गया था मैं अपने आप को उस समय कमजोर महसूस करने लगा था। मैंने सुना था पढ़ा भी था पर स्वयं कभी अनुभव नहीं किया था। दलितों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार के बारे में पढ़ कर और देख कर शरीर पर काँटें आते थे। उस दिन मैंने महसूस किया था दलितों के दर्द को...एक छोटी-सी घटना से मैं इतना आहत हो गया था। दलितों, आदिवासियों के दुःख, दर्द, पीड़ा के सम्मुख मेरा दर्द तो शून्य भी नहीं था पर फिर भी बहुत दर्द हुआ था उस दिन मेरी आँखें नम हुई थीं अपने आप पर दर्द देने वाले से ज्यादा गुस्सा आ रहा था और घृणा भी हो रही थी।

सिर्फ पीने के लिए पानी ही तो माँगा था मैंने। कह देता, घर में पानी नहीं है। हृदय इतना दुखी तो न होता पर उसने मेरे सीने में अस्पृश्यता का तीक्ष्ण हत्यार भोंक ही दिया था और मैं कुछ भी न कर पाया था खड़ा था खामोश। अचानक किसी ने हृदय को घायल करने से सम्हल नहीं पा रहा था। मैं महसूस कर रहा था किसी

ने मेरे पैरों तले की जमीन को खींच लिया है और मैं आधारहीन हवा में हवा बन लटक रहा हूँ मुझ में मानो प्राण ही शेष न रहे थे। उस दिन सूर्य आग बरसा रहा था सूर्य की किरणें आग की तलवार बन शरीर को झुलसाते हुए आहत कर रही थी। शरीर के भीतर का पानी पसीने की बूँदों द्वारा सूखता जा रहा था। शरीर में पानी की कमी होने के चलते मुँह और गला बुरी तरह से सूख रहा था। प्यास बहुत लग रही थी। रूम अब करीब ही था। नांदेड जिले के तहसील किनवट की बरसात जितनी प्रसिद्ध है, उतनी ही गर्मी भी प्रसिद्ध थी। शरीर तेज धूप को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था। चक्कर आने को हो रही थी। रूम अब नजरों के सामने थी कुछ ही क़दमों की दूरी बाकी थी पर उस समय यह कुछ ही कदम कई किलो मीटर लंबे दिखाई दे रहे थे। मैं नहीं चल रहा था बल्कि मेरा शरीर मानो अपने आप चल रहा था आखिरकार मैं रूम पर पहुँच ही गया था।

मैंने रूम का दरवाजा कैसे खोला और मैं भीतर कैसे गया मुझे पता ही नहीं चला था। मैं जैसे ही भीतर गया हाथ में पकड़े हुए किताबों को नीचे रखा और रूम के एक कोने में पानी से भरा हुआ जग रखा था। उस ओर ऐसे लपका जैसे कोई कई दिनों से भूखा व्यक्ति खाने को देख लपकता है। मैंने तेज गति से अपने कदमों को बढ़ाया और नीचे रखे हुए जग को दोनों हाथों से उठाया और उसका ढक्कन जल्दी से निकाल दिया। उस समय ढक्कन भी नहीं निकल पा रहा था न जाने वह कैसे पक्का बैठ गया था। कहा जाता है न मुसिबत में और भी मुसिबत आ जाती है पर मैंने ढक्कन निकालने में भी कामयाबी पा ली थी। ढक्कन को नीचे फेंक दिया था। दोनों हाथों से जग को मुँह की और ले आया था। उस समय गिलास होते हुए भी मैं जग से ही पानी पीने की चेष्टा कर रहा था। मुँह की दिशा आसमान की ओर थी और जग की उसके ऊपर जग से पानी की पहली धारा ने जैसे ही मेरे मुँह का स्पर्श किया ही था कि मैंने जिस फुर्ती से जग पानी पीने के लिए उठाया था, उसी फुर्ती से मैंने उसे फेंक दिया था। जो दीवार से टकरा कर नीचे गिर गया था। दीवार से टकराने के कारण वह पानी सारे रूम में फैल गया था। जग का साईज बड़ा होने से उसमें पानी भी ज्यादा बैठता था। सो मेरा बिस्तर गिला हो गया था। किताबों पर भी पानी पड़ गया था। उसके कुछ छींटे मेरे शरीर पर भी पड़ गये थे जिससे मेरे कपड़े भी भीग गये थे। जग का पानी गर्म था वह उबल रहा था। रूम पहली मंजिल पर था। आर.सी.सी.का होने से और भयानक धूप होने से रूम भी गर्म हो गया था। इसमें प्लास्टिक के जग की क्या बिसात थी वह भी उबल रहा था। बेसब्री से मैं पानी पी रहा था और उस पानी ने मेरे मुँह को बुरी तरह से झुलसा दिया था। मुँह जल रहा था कुछ समझ नहीं आ रहा था और उधर जग ने सारा रूम भी गिला कर दिया था। दर्द तो बेहद हो रहा था पर वह दर्द आनेवाले दर्द से कम ही था। मुझ पर उस दिन

संकट पर संकट आ रहे थे पता नहीं ऐसा क्यों हो रहा था। शायद वह आनेवाले संकट की पूर्व सूचना दे रहा था। मन बार-बार मानो कह रहा हो कि बेटा यह दर्द तो कुछ भी नहीं तुझे और एक दर्द का सामना करना है। सो और मुझे आने वाले संकट का सामना करने के लिए भी तैयार रहना था पर मुझे यह पता नहीं था कि आनेवाला अब कौन-सा संकट है, जिसे अभी झेलना बाकि है। जग दीवार से टकराकर नीचे गिरने के बावजूद भी वह फर्श पर सीधा खड़ा था और उसमें अभी कुछ पानी शेष था मानो वह मुझे चिढ़ा रहा हो।

मैं अक्सर कॉलेज जाने से पहले सुबह-सुबह नल का पानी भर लेता था। क्योंकि अब पानी गया तो कल तक ही प्रतीक्षा करना पड़ेगा। सो उस पानी से दिनभर और रात तथा नल को पानी आने तक काम चलाना पड़ता था। उस समय मैं किनवट के बलिराम पाटिल कॉलेज में लिव वेक्न्सी पर पूर्ण कालिक हिंदी अध्यापक बन कर आया था। अभी मुझे वहाँ आये पाँच माह हो गए थे। मुझे नांदेड से मेरे ही कॉलेज के एक अध्यापक सरस्वती विद्या मंदिर, किनवट से जो मुझे बेहद चाहते थे। उन्होंने ही मुझे उस कॉलेज पर बुलाया था। लिव वेक्न्सी का समय अभी खत्म होने के लिए एक माह शेष था। यह मेरा किनवट में आखिरी महिना था। वैसे मेरा बचपन यहीं किनवट में बीता था। वहाँ एम.ए. की पढ़ाई न होने के कारण मुझे नांदेड जाना पढ़ा था। वहाँ मैंने प्रसिद्ध पीपल्स कॉलेज से हिंदी में एम.ए किया था। संयोग वश मेरे पिताजी का तबादला नांदेड हो गया था। सारी समस्या का निराकरण हो गया था। सो उस के बल बूते यहाँ किनवट में आ गया था।

मैं पानी से झुलसाने के कारण दर्द से प्यास भूल-सा गया था पर दर्द जैसे ही कम हुआ फिर से प्यास लगनी शुरू हो गई थी। पानी तो गर्म था 90 प्रतिशत पानी नीचे गिर चुका था और 10 प्रतिशत पानी अभी उस जग में बाकि था। पानी गर्म होने से वह पानी पीने के बारें में मैं सोच भी नहीं सकता था। वह पल मेरे यादों में दर्द के शाही से अंकित हो चुका था सो उसे मैं कैसे भूल सकता था। प्यास तो लग रही थी और पानी भी गर्म था अब क्या किया जाये। मैंने अपना हाथ सर पर रख दिया पर अचानक मुझे याद आया की हमारे पड़ोस में महेश जी रहते हैं। महेश जी का सरनेम उन्हें प्राप्त उपाधि थी। जो उनके खानदान में उनके दादा-परदादा को मिली थी। वे जाति से ब्राह्मण थे उन्होंने बताया की पास के ही प्रसिद्ध शहर के राजसी खानदान से हैं। इसके लिए वे एक पुराना चित्र दिखाया करते थे। जिसमें उनके माता-पिता सिहांसन पर बैठे हैं और वे उनके पीछे राजकुमारों से वस्त्र परिधान कर खड़े थे। पता नहीं वह सच था या झूठ पर उनकी बातों पर यकीन करने के आलावा कोई उपाय भी तो नहीं था। मैंने जग उठाया और महेश जी के घर की और निकल पड़ा।

मैं पड़ोसी के पास पानी माँगने आया था। दरवाजा खुला था मैंने दरवाजे पर दस्तक दी और "सर...सर..." की आवाज लगाई थी।

दूसरी बार आवाज लगाते ही भीतर से आवाज आयी थी।

"कौन है?"

मैंने जवाब स्वरूप कहा, "जी सर, मैं हूँ।"

"मैं हूँ कौन?" प्रति आवाज आयी थी।

मैंने कहा, "सर, मैं हूँ आपका पड़ोसी कैलाश।"

"अच्छा अच्छा बंजारा, थोड़ा रुको आ रहा हूँ।"

"जी" मैंने कहा।

बाहर आते ही उन्होंने मुस्कुराते हुए पूछा था, "कैसे आना किया?"

इस पर मैंने जग दिखाते हुए कहा था, "सर, मैं आपसे पीने के लिये पानी लेने आया था। क्या मुझे पीने के लिए ठंडा पानी मिल सकता है?

सुबह कॉलेज जाते समय जग में पानी भर कर तो रखा था पर मैंने देखा कि जग में जो पानी है वह बुरी तरह से उबल रहा है। अब आप ही बतायें की मैं ऐसा पानी कैसे पी सकता हूँ? आप स्वयं इसे हाथ लगा कर तो देखें।"

जैसे ही मैंने जग दिखाने के लिए आगे बढ़ाया ही था कि उन्होंने चेहरे पर नकली मुस्कुराहट चिपकाते हुए कहा था।

"अरेरे...रहने दो। तुम कह रहे हो तो होगा ही गर्म...मुझे तुम पर विश्वास है।

कोई बात नहीं मैं पानी दे देता हूँ तुम यहीं ठहरो।" और वह पानी लेने के लिये भीतर चला गया था। मुझे पता था कि देशमुख जी के पास जरूर ठंडा पानी मिलेगा। पानी को ठंडा करने के लिये उनके पास दो मिटटी के मटके थे। सो प्राकृतिक फ्रिज उनके पास था। वे जहाँ रहते थे वहाँ दो कमरे थे वे भी मेरे ही जैसे किराये के कमरे में रह रहे थे। वे भीतर के कमरे में पानी लाने के लिये गये थे। मैं बुरी तरह थका हुआ था। उस पर प्यास...उन्होंने भीतर तक नहीं बुलाया था। वैसे मैं उन्हें आते-जाते बात करता था। पर उन्होंने कभी भीतर नहीं बुलाया और न ही कभी चाय के लिए पूछा था। वैसे मैं चाय तो नहीं पीता था पर उन्होंने कभी पूछा भी तो नहीं था। उस दिन वह कह देता झूठ ही सही पर कहता कि थके हुए लगते हो, तनिक बैठ जाओ पर नहीं। उन्होंने वहीं उसी अवस्था में खड़े रहने के लिए कहा था। वैसे इंसान ने कभी ऐसी आशा-अभिलाषा ही नहीं रखनी चाहिये जो कभी पूरी ही न हो सकती हो पर जो न हो हाँ में बदलते हैं, लोग उन्हें ही याद रखते हैं किन्तु यहाँ बात कुछ और थी। सो ऐसी बातों के लिए ही मैंने आशा-अभिलाषा वाली बात कही है।

प्यास आपनी तीव्रता को अभिव्यक्त कर रही थी। मैं बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा

था कि महेश जी कब मेरे लिये पानी लेकर आएँगे और मैं कब पानी पीऊँगा। उस समय हर सेकंड कई मिनटों के समान लग रहा था। मुझे इंतजार करते हुए पाँच मिनट बीत चुके थे। वे पाँच मिनट बाद बाहर आये थे। पानी लाने के लिए इतना समय तो नहीं लगना चाहिये था। भीतर से पानी लाने के लिए अधिक-से-अधिक एक मिनट का समय काफी था। किन्तु उन्हें बाहर आने में ज्यादा समय लग गया था क्योंकि वे पुराना लोटा और गिलास ढूँढ़ रहे थे। जब उन्हें वह मिला, तब जाकर उसमें पानी भर कर लाया था। एक हाथ में पानी से भरा लोटा और दूजे हाथ में खाली गिलास ले आये थे। लोटा पुराना और पिचका हुआ था गिलास भी कुछ ऐसा ही था। जो मेरे जैसों के लिये ही ख़ास रखा गया था। उस समय मेरी नजर सिर्फ लोटे के भीतर के ठन्डे पानी पर ही थी। मैंने बेसब्री से गिलास की और हाथ बढ़ाया ही था कि उन्होंने मुझे वैसे ही रुकने का संकेत करते हुए कहा था कि "एक मिनट...।" और उन्होंने गिलास नीचे जमीन पर रखते हुए कहा था, "अब उठाना गिलास..."

मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि वे मेरे साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं। कुछ पल ऐसा लगा कि हो सकता है कि वे मुझे कुछ सिखा रहे हो। मैंने उनकी मुँह की ओर देखा इस पर उन्होंने बनावटी मुस्कुराहट चेहरे पर लाते हुए कहा था, "गिलास उठाओ...पानी पीना है न?"

"हाँ" कहते हुए मैंने जमीन पर रखा हुआ गिलास उठाया। गिलास खाली था, प्यास लग रही थी और पानी उनके अन्य हाथ के मैले-कुचैले लोटे में था। उन्होंने मुझे थोड़ा पीछे हटने के लिए कहा, "क्या तुम, थोड़ा पीछे हट सकते हो?"

इतना कहना था कि मैं दो कदम पीछे हट गया।

अब हम दोनों में लगभग एक हाथ की दूरी बन गई थी। या यूँ कहे कि उन्होंने ही मुझे इतनी दूरी रखने के लिये कहा। वे मुझे जैसे-जैसे कह रहे थे, मैं भी वैसे ही करते जा रहा था। कुछ पल के लिए बिना सोचे समझे, वैसे भी समझ कर, मैं कर ही क्या सकता था। समय की आवश्यकता अनुसार मेरा शरीर व्यवहार कर रहा था। उसने लोटा आगे बढ़ाया मैंने भी ग्लास आगे कर दिया। गिलास का स्पर्श लोटे से होने ही वाला था कि उन्होंने लोटे वाला हाथ झट से पीछे खिसकाते हुए कहा, "गिलास थोड़ा नीचे करना।"

मैंने फिर से उनके चेहरे की ओर देखा। अब उनकी नकली मुस्कुराहट असली विकार में बदल रही थी। सो उनकी मुस्कुराहट कम हो गई थी अब की बार कुछ न बोलते हुए नजरों और भवों के इशारों से उन्होंने पानी लेने के लिए कहा। अब लोटे और गिलास में एक बालिश (बिलांग) का अंतर था। लोटे से पानी की ठंडी धारा खाली ग्लास में पड़ रही थी। जैसे-जैसे गिलास भर रहा था मन के किसी कोने में छोटी-सी खुशी की लहर दौड़ पड़ी थी पर कुछ ही पलों में मुझे अहसास होने लगा

कि महेश जी मेरे साथ ऐसा बर्ताव क्यों कर रहे हैं? किसलिये कर रहे हैं? वह मुझे अहसास दिला रहे थे कि चाहे तुम जितना पढ़-लिख लो तुम हमारी नजरों में अछूत थे, अछूत हो और अछूत ही रहोगे। हालाँकि वह पढ़-लिख कर घर ही बैठा था और अपनी पत्नी की तनख्वाह पर जीवन निर्वाह कर रहा था। वह छूत-छात पर परदा डालने के लिए स्वयं को सफाई पसंद कहता था। इसी झूठे मुखौटे के कारण ही लगी हुई नौकरी छोड़ वह घर पर ही गाँधी जी के चरखे से धागा बनाता था। मैं जब भी उन्हें गाँधी जी के चरखे से धागा बनाते देखता तब उनसे कहता, "सर, आज गाँधी जी के चरखे पर धागा बना रहे हो? भारत को आजाद हुए अब 53 साल हो गये हैं। देश आज कहाँ से कहाँ चला गया है अब तो हमारा शासन है और आप अब भी चरखे पर धागा बना रहे हो? लगता है आप पर गाँधी जी का अच्छा ख़ासा प्रभाव पड़ा है।"

इस पर वे कहते, "हाँ, गाँधी जी का प्रभाव तो है पर धागा बेचने के लिए बना रहा हूँ। मैं अपने बनाये हुए धागे के बने वस्त्र ही पहनता हूँ।"

"सर, तो क्या आप वस्त्र बनाना भी जानते हैं?"

"नहीं, पर यह धागा मैं वस्त्र बनाने वाले के पास भेजता हूँ और वह मुझे वस्त्र बना कर भेजता है।"

वास्तव में यह सब दिखावा था। लोग उसे यह न कहे की पत्नी की कमाई खा रहा है घर बैठ कर रहता है। इससे बचने के लिए उसने यह मार्ग ढूँढ़ लिया था। गाँधी जी भी ऐसे भक्त को देख कर धन्य ही हो रहे होंगे। खैर...पानी से अब तक गिलास भर चुका था। उसके ऐसे बर्ताव से पानी की प्यास न जाने कहाँ चली गयी थी फिर भी वह गिलास मैंने मुँह से लगाया था। पानी को गले से नीचे उतारने लगा था। एक-एक घूँट उस दिन मुझे जहर के जैसा लग रहा था जब मैं पानी पी रहा था। ऐसे में मैंने पानी पीते-पीते उसके चेहरे की ओर एक पल के लिए नजर डाली थी। वह मुझे हिकारत भरी नजरों से देख रहा था। शायद उसे मेरा गिलास को मुँह लगा कर पानी पीना अच्छा नहीं लग रहा था। जबकि गिलास हमारे जैसों के लिए ही तो उन्होंने रखा था। पहले ही पानी का हर घूँट जहर-सा लग रहा था। इस पर उसका हिकारत भरी नजरों से मेरी ओर देखना...पानी की बूँद को पत्थर के टुकड़े समान बना रहा था। जैसे-जैसे पानी गले से पेट में उतर रहा था ठन्डे पानी से पेट में ठंडक महसूस होना चाहिए था पर वह ठंडी अनुभूति नहीं हो रही थी। या यूँ कहे की उसकी हिकारत और छुआछुत की भावना का गर्म जहर मानो पेट में मिल गया हो। पहले ही गर्म पानी से मुँह झुलसा गया था। वह आग शांत होने न पायी ही थी कि यह आग मुझे भीतर से बुरी तरह जला रही थी। जैसे ही गिलास का पानी खत्म हुआ था। मुझे पुनः उनसे पानी माँगने की हिम्मत न हुई थी। माँगता भी कैसे

दोबारा जहर कौन पीना चाहता था। गिलास का पानी जब तक खत्म नहीं हुआ था, तब तक वह मुझे ताकता रहा था। जैसे ही पानी खत्म कर मैंने उनकी ओर देखा तो उन्होंने जहर बुझी हँसी हँसते हुए कहा था, "और चाहिये पानी...पीओ...पीओ और पानी है इसमें।"

वास्तव में उन्हें उस लोटे का पानी खत्म करवाना ही था। क्योंकि उनकी नजरों में वह पानी मेरा हो चुका था अर्थात अछूत हो गया था। सो वह पानी वे पुनः कैसे इस्तेमाल करते। मैंने ना में सिर हिलाते हुए इनकार कर दिया था। इस तरह का बरताव मेरे साथ पहले कभी नहीं हुआ था हालाँकि वह पढ़ा लिखा था। हम आजाद भारत में इक्कीसवी सदी में साँस ले रहे थे फिर भी मेरे साथ ऐसा...। मुझे लगा था कि शहरों में ऐसा नहीं होता होगा पर अब भी उसके जैसे लोग हमारे समाज में बाकी हैं। जो बाहर से सभ्य तो हुए हैं, पर भीतर से वैसे ही रह गये जो हजारों सालों से थे। सिर्फ शरीर बदला था पर मन और उनकी आत्मा वही थी। किनवट भले ही तहसील था पर नांदेड जिले के अन्य तहसीलों की तुलना में वह बड़ा था। अब तो उसे जिला बनाने की माँग तेज गति से तुल पकड़ रही थी। वहाँ सभी लोग उनके जैसे नहीं थे। मेरे कई ब्राह्मण दोस्त थे, ब्राह्मण अध्यापक थे पर उनसे कभी मुझे इस प्रकार का व्यवहार नहीं किया गया था। वे प्रगतिशील विचारों के थे। वे छूत-छात, जाति-पाति जैसा भेद नहीं करते थे।

उस दिन के बाद से मुझे उनसे से घृणा हो गई थी। पहले जैसा उत्साह अब नहीं रहा था। अनमने मन से सामने आ जाते तो नमस्ते कर देता था। इससे ज्यादा बात करने का तो सवाल उठता ही नहीं था। मुझे कॉलेज जाना हो तो या बाहर जाना हो तो उनका घर लाँग कर ही जाना पड़ता था। क्योंकि उनका घर रास्ते में ही पड़ता था। जब भी मैं उनके घर के सामने से गुजरता था। तब वह इस बात का ख्याल रखता कि मेरे शरीर का स्पर्श न होने पाये। जब-जब भी वह ऐसा करता था, तब-तब मेरा मन दुखी हो जाता था। सुबह कॉलेज जाते समय का उत्साह निराशा में बदल जाता था और सारा दिन वह दृश्य मेरे नज़रों के सामने नाचता रहता था। मेरा मन पढ़ाने में नहीं लगता था और न ही अन्य सहपाठियों से बातें करने में लगता था। सहपाठियों द्वारा दो-तीन बार मेरा नाम लेकर पुकारने के बाद ही मैं उस अवस्था से बाहर निकल पाता था। वह बरताव, मेरा साये की तरह पीछा करता था।

एक तो वह पानी वाली घटना और आये दिन ऐसी कोई-न-कोई घटना होते रहते ही थी। एक दिन वे पड़ोसी सुबह-सुबह स्नान आदि कर परली ओर मुँह करके तुलसी की पूजा कर रहे थे। वे पूजा में मग्न थे उनके मुँह से कुछ शब्द बाहर निकल रहे थे पर उनकी आवाज नहीं आ रही थी। बीच ही में उन्होंने अपनी आँखें बंद कर तुलसी वृन्दावन के सम्मुख अपने दोनों हाथ जोड़ खड़े हो गये थे। मुझे कॉलेज के

लिए देर हो रही थी। सो मैं जल्दी-जल्दी निपटाकर कॉलेज के लिए उनके घर के सामने से जा रहा था। अनजाने में मेरे शरीर का स्पर्श उन्हें हो गया उन्होंने अपनी आँखें खोलीं मेरी ओर देखा। मुझे सामने पा कर उनके उज्ज्वल चेहरे पर क्रोध की रेखा ने जन्म ले लिया था। उस समय उन्होंने मुझे कुछ नहीं कहा था क्योंकि उस दिन उनका मौन व्रत था। सो चेहरे और शरीर के हलचल से मैं समझ गया था कि वे मेरे स्पर्श से नाराज हो गये हैं। उन्होंने झटसे हाथों के इशारे से मुझे सरकने के लिए कहा था। मैं उनके पूजा में उस दिन बाधक बन गया था सो वे फनफना रहे थे। वे फनफनाते हुए आगे निकल गये थे कुछ आगे जा कर उन्होंने मुड़कर मेरी ओर देखा। मुँह से कुछ बुदबुदाया और फिर आगे चले गये। आगे जाकर सीधे बाथरूम में घुस गये थे। मुझे श्याम को किसी से पता चला था कि वे आधे घंटे के बाद ही बाथरूम से बाहर निकल पाये थे। आधे घंटे तक वे आपने शरीर को धोते रहे थे। उस स्थान को तो और अधिक धो रहे थे, जिस स्थान पर मेरा स्पर्श हो गया था। पता चला की अधिक घिस-घिस कर धोने से उस स्थान पर उन्हें जख्म हो गया था। सो मेरे स्पर्श ने उन्हें जख्मी कर दिया था बाहर और भीतर से...। जानकर मुझे खुशी भी हुई थी और दुःख भी हुआ था। खुशी इस बात की थी कि उन्हें जख्म हो गया था और दुःख इस बात का कि उन्हें मेरे कारण दुःख हुआ था।

वे अपने आप को मुझसे या मेरे जैसों से इतना बचाकर रखते थे कि यदि गलती से भी स्पर्श हो जाए या हमारी छाया भी उन पर पड़ जाये, तो उन्हें स्नान करना पड़ता था। एक बार ऐसे ही किसी का स्पर्श हुआ था और वे बाथरूम में तो घुस गये थे पर बाथरूम में पानी ही नहीं था। दो दिनों से नल में पानी ही नहीं आया था। सो वे सूखे बदन पर पत्थर ही रगड़ रहे थे। उन्होंने अपने परिवार को भी उन जैसा ही बना रखा था। उनकी पत्नी को यह सब पसंद नहीं था पर पति की अवज्ञा कैसे की जा सकती थी।

म कोनी मरे वाळ...!!!

"तू मर का जाइनिस ये...सेवा भाया असो काइं मार नसिबेम घाल दिनों तू। याड़ी जगदंबा तू सोगी ती काइं ये...। म तार काइं नास करना की...जकोंण आस छोरी मार पदरेम घालनाकी।"

गोदाबाई तांडे के उस छोटे से मकान में अपनी अपाहिज पोती रूपा को उसके जन्म पर कोस रही थी पर बारह साल की सुन्दर रूपा मुस्कुराये जा रही थी। मानो उस पर इस बात का कोई असर ही नहीं हो रहा हो। रूपा ने अपना बायाँ हाथ कमर पर रखा और दायें हाथ की चार उँगलियों को मोड़ तर्जनी दादी की ओर करते हुए अपनी दादी को कहा, "ये दादी! मार अंगाडया तम शे मर जायों पर म कोंनी मरे वाळ। देक लेस तू। अन हाँ इ गाठ बांधलस...। म शिकन मोठ हाफिसर वेय वाळ छू। अन जना देकिस तू मार वाया भी कतरा धुमधामेती वच जकोण।"

रूपा की बात सुनकर गोदाबाई एकदम चुप हो गई। वह समझ नहीं पा रही थी कि वह रोये या उस पर क्रोध करे और वह उठ कर 'अम्ब्या-अम्ब्या...कर रही गायों को चारा डालने के लिए चले गई।

जब भी खूँटे में बंधी गाय के पेट में भूख से चूहे दौड़ते तो वह गोदाबाई की ओर देखते हुए 'अम्ब्या-अम्ब्या की आवाज लगाते। गोदाबाई उसकी भी माँ थी। गोदाबाई ने अपनी मेहनत की कमाई से जब विशाल 10 साल का रहा होगा, पच्चीस साल पहले शहर के बाजार से एक बछिया गाय पाँच सौ रुपये में खरीदी थी। यह उसी की बछिया गाय थी। अपना बच्चा दूध-घी के लिए न तरसे...उसने उनकी सुख सुविधा का खयाल रखा था। विशाल के बापू जब विशाल पेट में था, तब परलोक सिधार गये थे। गोदाबाई का गर्भ उस समय आठ महीने का था। एक दिन जब गोदा का पति खेत में घास काट रहा था। अचानक एक साँप कहाँ से आया और कब उसने घास काटने वाले हाथ में अपना जहर छोड़ दिया पता ही नहीं चला था। वह

दर्द के मारे चिल्ला रहा था।

"मन साँप काट ली दो...मन साँप काट ली दो। याड़ी-बापू मर्गो ये...अब मारो काइं खरो छेनी।" वह भागता हुआ, उसी अवस्था में घर तक दौड़ा चला आया था।

"गोदा...गोदा...गोदा...गोदा कत छी तू।"

गोदा भीतर चूल्हे पर बाजरे की रोटी सेक कर, आग को बढ़ाने के लिए फुकनी से हवा दे रही थी और दूसरे हाथ में गूंथा हुआ आटा था। जैसे ही उसके पति की आवाज उसके कानो में पड़ी।

"धणीर आवाज दकारीच। धणी आज कुं काइं जल्दी आवगो। अन अतरा जोरे ती मन का हाक लगारोच।"

हाथ में लिया हुआ आटा लेकर वैसे ही बाहर आ गई। गोदा को देखकर गोदा का पति उसे लिपट गया। वह अपने प्राण त्यागने से पहले बस इतना ही कह पाया था, "गोदा मन साँप काट लिदो...म काइं अब बचेवाल छेई। मन माफ कर द, म ये जन्में काइं तार साथ दिनों कोणी।"

उसके मुख से सफेद झाग निकल रहा था। धीरे-धीरे उसका शरीर काला पड़ने लगा था। उसने अपनी अंतिम साँसे आठ महीने की गर्भवती गोदा के गोद में ली थी। गोदा पछाड़ खा कर रो रही थी उसके नये संसार को नजर लग गई थी। उसका गोरा मुख पीला पड़ गया था। उसका सबकुछ लुट गया था। बची थी तो बस उनकी निशानी जो गर्भ में पल रही थी। अब उसका जीवन उनकी निशानी मात्र थी। गोदा के पति को जब मृत्यु की अटलता दिखाई दी, तब वह अपनी अंतिम साँसें अपनी गोदा के गोद में लेना चाहता था। कब से प्रतीक्षा में खड़े यमराज ने उसके प्राण खींच लिए। उस समय गोदा के तीन देवर वह तांडा छोड़ कर दूसरी और चले गये थे। खेत बेचकर उन्होंने वहाँ 20 एकड़ जमीन खरीद ली थी वे खेत उपजाऊ थे। नई नवेली गोदा को भी साथ चलने के लिए कहा था पर गोदा ने वहाँ आने से इनकार कर दिया था उसने साफ कह दिया था।

"विशालेर बापू आतेर माटी माई समाये च। आत ओंदुर याद छ। मई नवी नवेली सुवाड़ी वो मलकेम आउनी भा। मन मार धणीर हिस्सेर खेत देदो म आतच जे पाच जकोण खालेन जगुचू।"

गोदाबाई ने अपनी पति के हिस्से की जमीन माँग ली थी। देवरों ने उन्हें आँठ एकड़ जमीन खरीद कर दे दी थी। खेत क्या थे कंकड़ थे। गोदाबाई ने हार नहीं मानी थी उसी कंकड़ीले खेतों में भी मेहनत से जान फूंक दी थी। उसके बूढ़े सास-ससूर ने गोदाबाई का साथ नहीं छोड़ा था उन्होंने अपने बेटों के साथ आने से इनकार कर दिया था। उस नई नवेली कोमलकान्त बहु को वे अकेले किसके सहारे छोड़ते। बहु के लिए उनके सिवाय वहाँ कोई भी तो नहीं था। विवाह के बाद तो लड़की पराई

हो जाती है। गोदा भी अपने माँ-बापू के पास नहीं जाना चाहती थी। गोदा के सास-ससूर उसके अपने माँ-बापू से बढ़कर थे। उन्होंने भी गोदा के साथ कभी बहु जैसा व्यवहार नहीं किया था। वे गोदाबाई की हर पल हिम्मत बढ़ाया करते थे।

गोदाबाई का लड़का विवाह योग्य हो गया था। उसने एक कर्मठ लड़की से उसका विवाह करवा दिया था। गोदा ने अपने एकलौते बेटे विशाल के लिए पढ़ी लिखी बहु ढूँढ़ी थी। आगे चल कर वह एक स्कूल में शिक्षक बन गई थी। विशाल को दो लड़के और दो लडकियाँ हुई थी। विशाल और उसकी माँ अपनी हर संतान पर खुश हुए थे उन्होंने लड़की-लड़का भेद नहीं किया था। सभी एक से बढ़कर एक खूबसूरत, स्वस्थ, पुष्ठ थे। विशाल भी तो अपने पिता की तरह पहलवान-सा था। जब वह बड़ा हुआ तो सारे लोग जिन्होंने उनके पिता को देखा था। वे कहते थे कि विशाल उसके बापू के जैसा दिखता है।

रूपा के जन्म पर परिवार में हर्ष उल्हास मनाया गया था। जब वह पैदा हुई थी, तब उसका वजन चार किलो था। मासूम, खूबसूरत थी रूपा। छोटे-छोटे नाजुक हाथ और पैर। उसके हाथों और पैरों को नजर न लगे इसलिए गोदा ने काला धागा बाँधा था। पिता विशाल ने बड़े लाड़ से उसके पैरों के लिए चाँदी की पायल शहर से बनवाकर लाई थी। जब-जब रूपा हलचल करती या पैरों को उछालती तो पायल में लगे छोटे-छोटे घुँगरू से 'छुन-छुन' की आवाज होती थी। वह उस आवाज को जितनी बार सुनती उतनी बार खुश होकर किलकारी भरती थी। जब भी उसकी माँ और पिता उसके पैरों को चूमते तो उसमें अजब-सा उत्साह दौड़ पड़ता था। पैरों को चूमते ही वह हँसने लगती थी। एक पैर पर चूमते ही दूसरा पैर चूमने के लिए आगे कर दिया करती थी। भरे हुए गोरे-गोरे गाल जो भी देखता उसके गालों की चिमटी लिए बिना न रहता था। रूपा भी थी कि मुस्कुराये जाती थी। रूपा तांडे में चर्चा का विषय बन गई थी। रूपा बहुत कम रोती थी। हमेशा उसका चेहरा मुस्कुराया हुआ रहता था। गोदाबाई उसे झूले में डाल देती और वह मस्त चौड़ी होकर सोये रहती थी। दो पेड़ों में रस्सी से बाँध कर उसमें गोधड़ी से झूला बनाया जाता था। खुली हवा में पेड़ के नीचे वह भी गहरी नींद सोती थी। मानो उसे बाहर सोना ही पसंद होता था। दादी रूपा की बात और रूपा दादी की बात अच्छी तरह समझती थी। रूपा को कब उठाना है। कब सोना है कब दूध पीना है।

दिन बीतते गए रूपा ने रेंगना शुरू कर दिया था। पहली बार जब रूपा ने रेंगना शुरू किया था। तब घर में आन्दोत्सव-सा माहोल था पर धीरे-धीरे पता चला कि उसके पैर सीधे नहीं हो पा रहे हैं। झूले में पता ही नहीं चला था उसके दोनों घुटनों के नीचे उसके पैर मुड़े हुए थे। वह अपाहिज पैदा हुई थी या बन गई थी। पता नहीं चल रहा था। उसे झोली में चौड़ा सोते देख सभी खुश होते थे। उसे देख कर कहते

थे, "याड़ी ये...कांई चौड़-चट सुतीच ये। कनाई सताईनी क...क कनाई रोयेनी। गचप पड़ी रच बापड़ी।"

शायद उसके पैरों को उसी समय सीधा किया होता या करके देखा होता तो हो सकता था कि रूपा अपाहिज न बनती...। अधिक खुशी ने उन्हें दुःख का उपहार दिया था। जब घर में पता चला कि रूपा के पैर घुटने से मुड़े हुए हैं। तब उसे अस्पताल में दिखाया गया। शहर में, शहर से बड़े शहर में। उस पर उसने लाख रुपये खर्च किये पर क्या हुआ ढ़ाक के तीन पात। डॉक्टरों ने हाथ खड़े कर दिए थे सबने हार स्वीकार कर ली थी। विशाल का रो-रो कर बुरा हाल था। अंत में उसके पास नियति को स्वीकार करने के सिवाय कोई ओर चारा नहीं था। विशाल सोच रहा था कि, "याड़ी जगदम्बा म कांई पाप करनाको। जकोण मन तू आस शिक्षा देरिची। शिक्षा देयेरच वेती तो मन देयेर वेती। इ मार कळजो तार काइं बिगाड़ नाकी।"

रूपा का मुस्कुराता चेहरा कुछ समय के लिए सब कुछ भूलने के लिए विवश करता था पर फिर से वही बात याद आ जाया करती थी। सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता था। जीवन चक्र चलता रहा रूपा दूसरे बच्चों के साथ बड़ी होने लगी थी। वह भी खेल सकती थी। वह भी उनके साथ दौड़ सकती थी पर उनकी तुलना में दौड़ते समय वह हाँफती थी। उसके भाई-बहन उसे "ए लंगड़ी...ए लंगड़ी।" कहकर चिढ़ाया करते थे। इस पर वह भी उन्हें कहती थी "तूच लंगड़ो...।" और गुस्से में घर में आकर बैठ जाती थी। रूपा अन्य बच्चों के साथ स्कूल जाने लगी थी पर स्कूल में भी उसे, "ए लंगड़ी...ए लंगड़ी..." कहकर चिढ़ाया जाता था। ऊपर से मुस्कुराने वाली रूपा अक्सर भीतर से रोने लगी थी। उसने स्कूल जाना छोड़ दिया था। अब वह घर पर ही रह कर पढ़ाई करती थी। बड़ी बहन ने उसे सिखाने का बीड़ा उठा लिया था। उसकी बहन उसे नियमित रूप से सिखाया करती थी। उसने बड़ी तेजी से बारहखड़ी, गिनती सीख ली थी। धीरे-धीरे समय बीतता गया बड़ी दसवीं कक्षा में जा चूकी थी छोटी आठवी में...। जब बड़ी साबुन से हाथ-मुँह धोकर पाउडर लगाकर स्कूल जाती वह भी उसके बाद पाउडर लगाती। आएने में अपने आप को देखती, सँवरती। यही सिलसिला दिन में तीन चार बार चलता रहता था। बड़ी को इस बात का गुस्सा आता कि रूपा मुझे देखकर ही ऐसा क्यों करती है?

"रुपड़ी तू मार देकनच करिची...। मार पौडर लागयेर वेगो तो...तू लगायेंन सुरु करेची।"

रूपा भी गुस्से में बड़ी को खरी-खोटी सुना दिया करती थी और अपने कमरे में जाकर बिस्तर में मुँह छिपाकर रोने लगती थी। रूपा को जब से यह समझने लगा था कि वह अपने भाई-बहनों की तरह सामान्य नहीं है। उसे अपाहिज होने पर सभी चिढ़ाते हैं। तब से उसकी आँखें अकेले में आसूँ बहाया करते थे। पढ़ाई-लिखाई में

तेज तर्रार रूपा का रूप उम्र के साथ और भी खिलता जा रहा था। रूपा के सौन्दर्य की चर्चा चहुँ ओर के तांडे में हो रही थी पर वहाँ भी रूपा का अपाहिजपन लोगों के सहानुभूति का कारण बना हुआ था। हर किसी के मुख से यही निकलता था कि "अतरा आच गुलाबेर फुले सरीक छोरी, चांदा-सो मुंखडो पणन आस टाँगे माइती चलेगी भा। देविन दशक भी दयामया आई कोणंती? काइं करा नसिबेरो लेको, कुण मिटायेवाळ छ। खाये वोर नसिबेती।"

रूपा को लोगों की सहानुभूति बिलकुल पसंद नहीं आती थी। जब भी कोई इस प्रकार की सहानुभूति प्रकट करता, तब वह भीतर से आग बबूला होती थी। गुस्से में वह कमरे में चली जाती और बिल्ली के सामने अपना गुस्सा प्रकट करती थी। उसने बड़े प्यार से बिल्ली का नाम गोल-मटोल होने के कारण गोली रखा था। घर में एक बिल्ली ही तो थी, जो उसे कभी 'ए लंगड़ी' कहकर नहीं पुकारती थी और न ही कभी सहानुभूति प्रकट करती थी। रूपा को वह बिल्ली सबसे अधिक पसंद थी। अपना दुःख, दर्द, पीड़ा सब कुछ उसके सामने उंदेल कर रख देती थी।

"गोलू, लोक मन हानू का कच, मार सोबत हानू का वागच। म काइं करना की जकोण...। मन ओंदुर सहानुभूति चाईनी।"

रोते-रोते गुस्से में आ जाती थी। बिल्ली सब कुछ सुनती रहती थी। मानो वह रूपा की सारी बातें समझती हो। एक दिन तो रूपा को अपने अपाहिज होने पर बहुत गुस्सा आया था। उसने अपने पैरों को ही समाप्त करने का फैसला कर लिया था। उस दिन उसने कोठे में रखी हुई दराती उठाई और कमरे में धस गई। लेकिन उसकी हिम्मत नहीं हुई की वह अपने पैरों पर दराती चलाए दराती को उसने फेंक दिया। कोने में रखा हुआ, खुला कुल्हाड़ी का डंडा उठाया और खट-खट अपने पैरों पर चलाने लगी। जब वह अपने पैरों पर डंडा चला रही थी, तब बिल्ली बीच में कूद पड़ी थी। वह रूपा को रोकना चाहती थी पर वह बेचारी क्या कर सकती थी। उस गुस्से का शिकार वह भी हो चुकी थी। एक जोर का वार उसके पिछले दो पैरों पर लगा था। जिसमें बेचारी डर कर, लंगड़ाते-लंगड़ाते एक कोने में दुबक कर बैठ गई थी। उस दिन गोदाबाई और उसका बेटा खेत गए हुए थे। माँ और भाई, बहन स्कूल में। ...श्याम को गोदाबाई खेत से लौटी तो देखा रूपा कहीं नहीं दिखाई दे रही थी। उसने देखा कमरे में रूपा बेहोश-सी पड़ी हुई है। उसके पैर लहूलुहान हैं एक हाथ में कुल्हाड़ी का खुला डंडा है। गोदाबाई जोर-जोर से रोने लगी थी।

"रूपा इ काइं करना की ये तू...।"

रूपा का सर गोदाबाई ने अपनी गोद में लिया। रूपा बेहोश थी रूपा की इस अवस्था को देख कर उसे अपने पति की याद आ गई थी। उसके पति ने भी ऐसे ही दम तोड़ा था। गोदाबाई के ओंठ सूख रहे थे उसका दिल बैठा जा रहा था। मन

आशंकित था कि रूपा अब...। गोदाबाई ने पानी के छींटे रूपा के मुख पर फेंके। रूपा में हलचल हुई तो गोदा के जान में जान आ गई थी। रूपा ने आँखें खोलीं तो पाया कि वह अपनी दादी के गोद में है। उसने दादी को देख कर रोना शुरू कर दिया था।

"दादी, याड़ी जगदम्बा मार सोबत हानू का किदी। मार टाँगे वळे का करना की। म तमार सरिक का छेनी? मन मार टाँगे सूधो करेर वेति जेती...।"

और दोनों हाथों से मुँह छिपाते हुए फूट-फूट कर रोने लगी। दादी ने रूपा को अपने गले लगा लिया और दादी भी रोने लगी थी। जब कुछ शांत हुई तो रूपा को समझाते हुए कह रही थी कि "रूपा, इस दुनिया में ऐसे कई लोग हैं, जिन्हें किसी को हाथ है, तो किसी को पैर नहीं, कोई अँधा है, तो कोई चल नहीं सकता। तू इन सबसे बहुत अच्छी है रूपा। तू चल सकती है, तेरे हाथ अच्छे हैं, तेरे दोनों आँखें सही सलामत हैं, तू दिखने में भी खूबसूरत है, तू पढ़ने-लिखने में होशियार है। तो तू ही बता बेटा, तुझमें किस बात की कमी है? हाँ, माना कि देवी ने तेरे पैरों के साथ इन्साफ नहीं किया पर तू उनकी ओर देख जो पूरी तरह अपाहिज हैं। उनकी ओर मत देख जिनके हाथ, पैर, नयन, नक्श ठीक है। उनकी बातों पर भी ध्यान मत देना। रूपा क्या तुझे पता है कि लोग दिमाग से भी अपाहिज होते हैं? तेरा दिमाग तो सर्र से दौड़ता है।"

दादी की बातों ने उसमें नए उत्साह का संचार हुआ था। अब वह अपने-आप को हलका महसूस कर रही थी। रूपा ने उस दिन अपनी दादी से वादा किया था कि वह अपने पैरों पर खड़ी रहेगी। वह किसी पर बोझ तो नहीं थी पर उसने ठान लिया कि वह किसी पर बोझ भी नहीं बनेगी वह आत्मनिर्भर बनेगी। उस दिन उसने अपने मन से यह निकाल दिया था कि वह अपाहिज है पर अब गोली रेंगते हुए चल रही थी।

रूपा ने जिद और लगन से शिक्षक बनने की शिक्षा पूरी कर ली थी। पास ही के तांडे पर वह विकलांग आरक्षण से शिक्षक भी बन गई थी। वह खुश थी, खुश खबर सारे तांडे में फैल गई थी। उसकी वाह-वाही चहुँ ओर हो रही थी। रूपा ने गोदाबाई को खुश खबरी दी, तो गोदाबाई की आँखें खुशी से डबडबा गई थीं। वह अपने कमरे गई, तो उसे गोली की याद आई वह अपनी खुशी उसे बताना चाहती थी पर उसने तो पाँच साल पहले उसका साथ छोड़ दिया था। उसने अपना घर आसमान में बना लिया था। वह छत पर गई और आसमान की ओर देखते हुए कहा, "गोली अब म दिव्यांग छेनी।"

मच तार याड़ी छू ये...!

"एक बाटी द य मन..! घण भूख लागरीच ये मन...। ये...देइची क कोनी तू? दनी ये...म आत कनाती पेट पकड़न बेटी चूँ...।"

बूढ़ी अम्मा ने पीठ की हड्डियों से चिपके पेट को दोनों हाथों के उँगलियों की हड्डी से दबाते हुए कहा था। चेहरे की खोपड़ी से चिपका हुआ, झुर्रियों से भरा...काले माँस से लिपटा हुआ गला और मुख चिल्ला-चिल्ला कर सूख गया था। लेकिन बूढ़ी हड्डियों में अब भी गुस्सा कूट-कूट कर भरा हुआ था। अम्मा ने विमल से बंजारा भाषा सीख ली थी। सो वह विमल से बनजारा भाषा में ही बात करती थी। अम्मा की उम्र लगभग अस्सी होगी पर एक स्थान पर बैठना उसे कतई पसंद नहीं था। वह अपनी लकुटी टेकते-टेकते पड़ोस के विमल के पास जाती थी। उसकी लकुटी और विमल मानो दो सहेलियाँ हों। पाँच साल पहले जब वह बिना लकुटी के चलती थी, तब उसने अपने हाथों से लकुटी की लकड़ी का चयन किया था। उसने कई बार लकुटी लाने के लिए परिवार में कहा था पर किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी थी। उसने एक दिन घर के आँगन में रखी दराती उठाई और गली के पीछे जहाँ बबूल का बड़ा पेड़ था वहाँ चल दी। वह बबूल लगभग पन्द्रह-बीस साल पुराना रहा होगा। पेड़ के पास जाने के बाद उसने लकुटी के लिए बबूल की नीचे झुकी हुई टहनी को चुना और दराती से उस पर वार-करने लगी। जैसे-जैसे वह वार करते जाती थी, वैसे-वैसे उसे अपने पति की याद आती थी। वह बबूल का पेड़ उसके ही पति ने लगाया था। उसने तोड़ने से मना किया था। उसने एक दिन प्यार से कहा था—"जानू, वह बबूल का पेड़ देख रही हो ना!...एक दिन उस बबूल की टहनी तेरे काम आएगी। जब मैं न रहूँगा तब उस बबूल में मुझे देखना। मैं तुम्हें वहीं मिलूँगा।"

अपने पति को याद करते हुए...अपने पल्लू के छोर से आँखों में भर आये आँसू को पोछने लगी। फिर न जाने क्यों मुस्कुराई उसने टहनी तोड़ी उसे दराती से साफ

किया और उसे लेकर घर लौट आयी। तब से वह लकुटी उसके पति की याद बन गया थी। उसे लगता कि उसका पति उसके साथ ही है। कोई यदि उस लकुटी को क्षति पहुँचाता, तो वह गुस्से में आ जाती थी। उसने उसे बड़े प्यार से सम्भाल कर रखा था वही लकुटी उसका सहारा था, वही लकुटी उसका पति था और सहेली भी। जब कोई उससे बात न करता तब वह अकेले में उससे घंटो बातें करती रहती थी। जब उससे जी भर जाता या उसे भूख लगती तो वह पड़ोस के विमल के पास लकुटी टेकते-टेकते चली जाती थी।

अम्मा का समय तय होता था। विमल के घर कब जाना है, लौटकर कब वापस आना है। वह रोज दोपहर में जब उसकी बहन सुस्ताती थी, तब वह विमल के घर चली आती थी। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ साफ-साफ देखी जा सकती थी। शरीर के माँस ने धीरे-धीरे उसका साथ छोड़ना शुरू कर दिया था। अब तक जो हड्डियाँ माँस से ढकी रहती थी अब वह उभरकर दिखने लगी थी। अम्मा महा-राष्ट्रीयन वस्त्र नऊवारी साड़ी पहनती थी। बाकि उसकी बहन या परिवार की स्त्रियाँ इस प्रकार का वस्त्र नहीं पहनती थीं। वे साड़ी पहनना पसंद करती थी। परिवार की स्त्रियों ने और उसकी बहन ने भरसक प्रयास किया था कि अम्मा साड़ी पहने पर अम्मा किसी की बात सुनने वालों में से नहीं थी। वह स्वभाव से कड़क और मुँहफट थी वह कटू शब्दों में फटकारते हुए अपने अंदाज में कहती थी—

"क्यों गे, मैं साड़ी क्यों पहनूँगी? मैं नऊवारीच पहनूँगी! मेरा शरीर है। क्या पहनना है और क्या नहीं, वह मै तय करूँगी। समझी ना या फिर से समझाऊँ।"

अम्मा के ऐसे स्वभाव से सभी उससे दूर रहते थे। अम्मा का चिढ़-चिढ़ापन उम्र के साथ बढ़ता ही जा रहा था। उस दिन वह रोज की तरह लकुटी टेकते हुए आयी थी। वह उस उम्र में भी लकुटी ऐसे आगे बढ़ाती जैसे मानो लकुटी उसका तीसरा पैर ही हो। वह आकर विमल के घर बैठ जाती। वह चोखट पर नजरें गड़ाये विमल की प्रतीक्षा में बैठी रहती गर्दन को बार-बार टेढ़ा करके देखती। कुछ बड़बड़ाने लगती और पेट को पकड़ती। जब उसे भूख बर्दाश्त नहीं तो, उसे लगता कि उसके आते ही विम्मो उसके लिए रोटी लेकर आ जाती थी। खाना-खाने के बाद गरमा-गरम चाय बनाकर पिलाती थी। इस पर बूढ़ी अम्मा विमल को लाख-लाख दुवाएँ देते हुए अपनी ऊँगली को माथे पर मोड़ती थी और अपने पेट पर हाथ घुमाते हुए कहती, "पेट भरा गो, विम्मो...अब बस!"

पानी गले से नीचे उतार कर तृप्ति की एक डकार देती थी। विमल भी उसे तृप्त देख कर प्रसन्न होती थी। विमल की याड़ी वहाँ से बहुत दूर एक तांडे में रहती थी। विमल की माँ अब नब्बे को पार कर चुकी थी। वह इस उम्र में भी चल फिर सकती थी सारा काम स्वयं कर लेती थी। जवान भी उसके कार्य को देख कर शरमा

जाते थे। उनकी आँखें आज भी दूर की चीजें देखने में समर्थ थी। वह बहुत कम बीमार पड़ती थी। इसका राज था वह खुली हवा में झोपड़े के बाहर खटिया पर सोती थी। स्वयं का काम स्वयं करती थी पर बढ़ती उम्र में इंसान का शरीर कब तक स्वस्थ रह सकता है, कब तक साथ दे सकता है। वह भी अब दूर का सफर करने में अक्षम हो चुकी थी। विमल को उसकी अक्सर याद आती थी। उससे मिलना है, तो तांडे पर जाना पड़ता था। यही कारण था कि अम्मा को ही अपनी याड़ी समझ कर भोजन करवाती थी और भोजन के बाद जब तक उसका जी न भरे तब तक पुरानी यादों की खट्टी-मीठी बातों पर समय बिताते थे।

बूढ़ी अम्मा में विमल अपनी याड़ी की छवि देखती थी। जब वह अम्मा को फुर्रर करके चाय पीती देखती तो उसे अपने याड़ी की याद आ जाती थी। उसकी याड़ी भी गरमा-गरम चाय को प्लेट में लेकर उसे फूँक मारते हुए...होंठों को गोल करके हवा से सुर्रर से भीतर चाय का घोंट खींचती थी। फुर्रर करते हुए चाय पीने का आनंद याड़ी के लिए कुछ और ही होता था। वह जब भी चाय पीती तो पास-पड़ोस वालों को पता चल जाता था कि विमल की याड़ी चाय पी रही है। उसका चाय पीने का समय सुबह पाँच बजे होता था। मजाल है कि समय इधर-उधर हो जाये। चाय के लिए वह खुद नीम के पेड़ के नीचे बंधे गाय को दुहती थी। तीन पत्थर के बने चूल्हे में जंगल से लाई गई सुखी लकड़ी पर गाड़े दूध की चाय बनती थी। आग भी वह खुद ही पैदा करती थी। दो गार पत्थर को एक-दूसरे पर चोट करती और उससे उत्पन्न चिंगारी से चूल्हे में आग जलाती थी। विमल के बचपन में आज की तरह माचिस आसानी से नहीं मिल पाती थी। तांडे में जिसके घर आग जलती दूसरा आग का कोयला अपने घर ले जाता था और उसके घर भोजन पकता था। आग का कोयला ले जाने के लिए गाय के गोबर से बने घोपले का प्रयोग होता था। याड़ी का इस तरह आवाज करके पीने पर विमल को बहुत घुस्सा आता था। एक दिन उससे रहा नहीं गया। उसने अपने याड़ी से पूछा, "याड़ी, तू पुर्रर करन का चा पियेची ये? मन घण रिस आवच!"

इस पर याड़ी विमल को प्यार से अपने करीब लेती और उसे समझाते हुए कहती।

"बेटा, मन फुर्रर करन चाय पिदी तो घणों आचो वाटच...अन फुर्रर करन चा पियर वातच नाली छ...। अब जर म आवाज करन न पीदी तो चा पीदी कारण वाटेनीच ये...।"

उस दिन से विमल चाय, पानी या कोई भी पीने वाली चीज होती। तब वह याड़ी के सामने जान-बूझकर फुर्रर आवाज कर के पीती थी। तब वह भी वही बात दोहराती थी। जो बात याड़ी ने चाय के लिए दोहराई थी।

जब अम्मा की भूख बरदाश्त के बाहर चली गयी और पुकारने के बाद भी उस दिन जब विम्मो की कोई आवाज नहीं आयी। तब वह और भी गुस्से में आयी थी। उसके गुस्से में अपनापन था अधिकार की भावना थी। उसने फिर से बूढ़ी हड्डियों से आवाज देते हुए कहा, "तू बेरी वेगी काइंये...? तोंन आटारोच क कोनी...? हानू मन का सतारिची ये...कुणस जन्मेरों बदलों लेरिची ये...तू...ग्रकत जान बेटिची ये तू? भार निकळनि ये...।"

बूढ़ी हड्डियों के गले से निकलने वाली आवाज से पूरा शरीर काँपने लगा था। उसी हिलते हुए शरीर से उसने अबकी बार विमल को धमकी दे डाली थी।

"काइं ये...तोंन गली माईं रेयेर छेनी काइं? तू भार निकळ...तोंन म आज दकाळू चू देक।"

वह अपनी लकुटी गुस्से में पटक रही थी। बेचारी धरती भी लकुटी की मार सह रही थी। अब तक विमल अम्मा की बात सुन रही थी। उसने बूढ़ी अम्मा को आता देख लिया था। आते हुए देख कर वह रसोई में उसके लिए रोटी लाने के ही लिए गई थी। उसने जब रोटी की टोकरी में झाँक कर देखा तो उसमें रोटी नहीं थी। उस दिन शायद किसी ने एक रोटी ज्यादा खा ली थी। अन्यथा विमल अपने बच्चों और पति के लिए रोटी सेकती तो एक रोटी अम्मा की उसमें जरूर होती थी। जब विमल ने टोकरी को खाली देखा तब उसने तुरंत आटे के डिब्बे से आटा निकाला और थाली में आटा गूँथा। तवा गैस पर चढ़ा दिया। रोटी तवे पर चढ़ गयी। फूली और टोकरी में सज गई। आलू काटे दूसरे गैस पर सब्जी बनने लगी। ऐसे में अम्मा की आवाज तेज हो गयी थी। विमल अम्मा की पीड़ा को समझ रही थी। अम्मा की डाँट खाकर भी वह मुस्कुरायें जा रही थी। उस वक्त अम्मा की डाँट मानो उसे अपनी प्रशंसा लग रही थी अम्मा को वह याड़ी कहती थी। जब अम्मा की फटकार बढ़ गई थी। तब विमल से रहा नहीं गया उसने कहा, "याड़ी म तार सारुच बाटी कररीचू ये! दशक कसर काड़ देक...।"

उधर अम्मा को अब सब्र नहीं हो रहा था। विमल ने आधे कच्चे, आधे पक्के आलू की सब्जी को गैस से उतार दिया था। गरमा-गरम सब्जी और रोटी थाली में परोसकर उसने घड़े से एक लोटा पानी भर लिया था। एक हाथ में लोटा और दूसरे हाथ में थाली थी। जैसे ही विमल बाहर आयी, तब अम्मा उस पर टूट पड़ी। "कतराक वेळ लगाईची ये तू...अन्न माइं मनक्या मर जायेंर पाळी छ।"

"कितना देर लगाती गे तू...इतनी देर में तो आदमी भूख से मर जाये।"

"याड़ी तार सारुच बाटी करररी चू ये। दाड़ी...तारे नामेर बाटी करूचू ये...पणण आज कूण खालदो मालम छेनी। जकोण तार सारुच...गरमा-गरम तार पसंतेर भाजी सोबत बाटी किदीचू।"

"माँ, तेरे लिए ही खाना बना रही थी गे...रोज तेरे नाम की रोटी बनाती लेकिन आज किसने खा ली पता नहीं। इसीलिए मैंने तेरे लिए...गरमा-गरम तेरी पसंदीदा सब्जी के साथ खाना बनाया है।"

विमल ने गरमा-गरम भोजन की थाली अम्मा के सम्मुख रख दी। वह बेसब्री से निवाला गले से उतार रही थी। खाना खाते हुए उसके मुँह से मच-मच की आवाज आ रही थी। वह पूरे आनंद के साथ भोजन कर रही थी। वह खाना खाते-खाते बड़बड़ाने लगी थी।

"तूने ही खाया होगा गे! दूसरे का नाम ले रही है।" विमल को इस बात का बुरा नहीं लग रहा था वह आशीर्वाद समझ रही थी। वह कहती, "तू तो मेरे माँ है गे। तेरे हिस्से का मैं कैसे खायेगी।"

"कौन किसकी माँ? मैं तेरी माँ-वा कुछ नहीं। माँ होती तो इतनी देर भूखा रखती क्या गे।"

रोटी गले से उतरते हुए पेट में समाहित हो रही थी। गुस्सा भी वैसे ही शांत हो रहा था। जब वह खाना खाते समय बात करती तो उसके मुँह से पानी का फव्वारा छूटता था। या रोटी के छोटे-छोटे कण उड़ते थे पर अम्मा थी लाजवाब। जैसे ही उसकी भूख शांत हुई..उसने अपने पेट पर से हाथ फेरा डकार ली और कहा, "पेट भर गया।" और लाख-लाख आशीर्वाद देने लगी। जिस मुँह से अब तक गालियाँ-डाँट निकल रही थी अब उसी मुँह से आशीर्वचन की मोतियाँ झर रही थी। उसने अपनी उँगलियों को माथे पर मोड़ते हुए विमल की बलाएँ दूर की और कहा, "क्यों गे विम्मो, नाराज हो गई क्या? मैंने तेरे को बुरा भला कहा, तूने चुपचाप सुन लिया पर क्या करती भूख भौत लग रही थी गे। भगवान ने ये पापी पेट दिया नहीं होता...तो ये नौबत आती ही नहीं थी। मैं सच बोलूं क्या? मैं कल से भूखी थी गे। मेरे को मेरी बहन ने खाना नहीं दिया गे।"

यह बात सुनना ही था कि विमल दुःखी हो गई थी। वह कहने लगी थी, "कैसे लोग हैं ये...एक बूढ़े को खाना भी नहीं देते। कितना लगता है इस बूढ़े को...। इसके खाने से ही सारा खाना खत्म हो जाएगा क्या उनका?"

विमल का गुस्सा देख अम्मा का अच्छा लगा था कि उसकी ओर से कोई तो बात करने वाला है। बूढ़ी अम्मा निसंतान थी। उसे कोई संतान नहीं हुई थी। उसने क्या-क्या नहीं किया था। किस-किसको नहीं दिखाया था। डॉक्टर, वैद्य, हाकिम, महाराज प्रत्येक स्थान से उसके हिस्से निराशा ही आयी थी। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च में भी वह गई थी पर उसकी गोद हमेशा सुनी ही रही थी। उसने कई सपने देखे थे उसकी गोद भर गयी है। उसके पेट पर एक नन्ना-सा बालक कूद रहा है। वह आनंद के आश्रू बहा रही है पर उसका सपना, सपना ही रहा गया था। वह कभी

पूरा नहीं हुआ था। वह जिन्दगी भर संतान की लालसा कर रही थी। जब भी वह दूसरों की संतान को देखती तो उस पर माँ का प्यार लुटाने लगती थी। अम्मा ने कुछ देर बाद अपने मन की गाँठ खोली थी। उस दिन उसने जो बताया वह सुनकर वह दंग रह गयी थी। उसके पैरों तले की जमीन खिसक गई थी। अम्मा के गले में थोड़ा-सा रुन्दन था। वह रुन्दन भरे गले से कहने लगी थी।

"विम्मो, मेरे कारण उसका खाना खत्म नहीं होगा गे। यह उसे भी पता है ...और मुझे भी पता है। बात वह नहीं गे। बात कुछ और है।...मेरी बहन और बहन के बेटों ने मुझे धमकी दी है कि जब तक घर तू हमारे नाम पर नहीं करती, कागज पर अंगुठा नहीं लगाती, तब तक तुझे हम खाना नहीं देंगे। मैं दो दिन से भूखी थी गे। उन्होंने मुझे खाने का एक दाना भी नहीं दिया था गे। मुझे तो कोठरी में बंद कर दिया था। वह तो भला हो छोटे बच्चे का उसने दरवाजे की कुण्डी खोल दी ...और मैं तेरे पास तेज लकुटिया टेकते-टेकते आ गयी थी।"

विमल की आँखों से आँसुओं की धारायें बह रही थीं। अम्मा ने अपने दर्द को जो कब से अपने भीतर दबाए थी उस वक्त दर्द का बाँध टूट चुका था। नदी का बाँध टूटने से जिस प्रकार से नदी के पानी का प्रवाह तेज गति से जिस ओर दिशा मिले दौड़ने लगता है और बाँध खाली हो जाता है। बिलकुल वैसे ही अम्मा का दर्द अब विम्मो के सम्मुख बह गया था। बहुत देर तक बैठे रहने के बाद उसे याद आया कि उसकी बहन अब नींद से उठ गयी होगी। वह सोचने लगी थी "उसने मुझे कोठरी में नहीं देखा तो...। नहीं..नहीं मुझे अब चलना चाहिए।"

विम्मो ने लकुटी उठायी और अपने घर की ओर लौटने लगी। वह विमल के फाटक तक पहुँची ही थी कि उसने एक बार पलट कर देखा और विम्मो को कहा, "विम्मो, तू ही मेरी बेटी है गे! भगवान जिसे संतान नहीं देता है उसे विम्मो जैसी बेटी देती है। मुझे तेरे रूप में भगवान ही दिखाई देता है गे। शायद भगवान को मेरी तकलीफ देखी नहीं गई इसीलिए तुझे मेरी मदद के लिए भेज दिया।...और हाँ, मैं ही तेरी माँ हूँ गे!" कहते हुए वह अपने तीसरे पैर लकुटी के सहारे अपने घर पहुँच गई थी। उस दिन विमल फाटक पर बहुत देर तक खड़ी रही उसने अपनी विवशता को कोसा पर अम्मा के कुछ काम आ जाने के कारण थोड़ा-सा राहत पाया था। एक दिन रात आठ या नौ बजे के दरमियान विमल के दरवाजे पर दस्तक हुई थी। दरवाजा खोलने पर पता चल कि वे बूढ़ी अम्मा के भाँजे हैं। उन्होंने विमल के पति से सलाह ली कि, "अम्मा, बहुत बीमार है, वह अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। घर उसके नाम पर है। वह मर गयी तो घर हमारे नाम पर भी नहीं होगा। अब क्या किया जाये?" इस पर विमल के पति ने कहा, "आप उनकी मर्जी के खिलाफ नहीं जा सकते। यदि वह अपनी मर्जी से अपना अँगूठा घर के कागजात पर लगाती है, तो

वह घर तुम्हारा होगा।"

उस दिन उन्होंने हाँ में हाँ मिलाया था और वे वापस लौट गये थे। अम्मा के पति संतान की चाहत में मर गये थे। सो अकेलेपन के कारण अपने बहन और बहनोई को बुला लिया था। एक दिन बहनोई घर छोड़ कर भाग गया था बाद में पता चला कि वह सन्यासी बन गया है।

दूसरे दिन सुबह घर उनके नाम हो चुका था। सूर्य के उगने के साथ ही पता चला कि बूढ़ी अम्मा सूर्य देव के पास चली गयी है।

एक नन्हा-सा पक्षी

एक नन्हा-सा पक्षी आसमान से उड़ता हुआ आया और अचानक घनश्याम के आँगन में लगे वृक्ष से टकराकर लुढ़क गया और मूर्छित हो गया। जैसे ही घनश्याम ने उस पक्षी को देखा तो दौड़ता हुआ; उस पक्षी के पास गया। घनश्याम एक संवेदनशील प्रकृति प्रेमी लड़का था। उस पक्षी को उस अवस्था में देख वह कैसे शांत बैठता। उसने झट से उसे अपनी हथेली पर उठाया और घर के भीतर ले आया।

यह गर्मियों का महिना था। सूर्यदेवता अग्नि वर्षा कर रहे थे। धरती तप कर लाल हो रही थी। इस साल वर्षा ठीक से न होने के कारण महाराष्ट्र के मराठावाडा आँचल में सूखा पड़ा था। फरवरी माह में ही जल कूपों, कुओं, तालाब, नदियों का पानी सूख चुका था। शहरों में जिनके जल कूप (बोर) का पानी सूख रहा था। वे भविष्य के लिए चिंतित दिखाई दे रहे थे। जिस समय जल की कोई कमी नहीं थी तब उसे लाप्रवाहों के तरह बहा दिया गया था। उस समय उसका कोई मोल नहीं था। उसे सुरक्षित करने की कोई योजना नहीं बनाई गयी थी। आज उसी का खामियाजा वे भुगत रहे थे। आज वे एक-एक बूँद के लिए चिंताग्रस्त दिखायी दे रहे थे या प्यास लगने पर कुआँ खोदने जैसे बात लग रही थी पर अब कुआँ खोद कर भी पानी नहीं लगने वाला था। क्योंकि धरती के भीतर का पानी ही अब सुख चुका था।

मार्च लगते-लगते कई स्थानों पर महानगरनिगम द्वारा टैंकरों से जल की आपूर्ति की जा रही थी। उधर नांदेड के प्रसिद्ध विष्णुपुरी जलाशय में मात्र दो माह का पानी शेष रह गया था और आगे मई का महिना बाकी था। यह शहरवासियों के लिए परीक्षा का समय था। सूखे के चलते स्कूल-कॉलेज की परीक्षाओं को भी जल्दी लिया जा रहा था। शहर के मेयर ने जल की रक्षा का भार शहरवासियों पर छोड़ दिया था और इस दिशा में मेयर का सम्मान करते हुए शहरवासियों ने इस दिशा में कदम उठा लिया था।

वह सुंदर छोटा-सा पक्षी सूर्य की अग्नि बर्दाश्त नहीं कर पाया था। इसीलिए वह मूर्छित हो गिर गया था। उसकी आँखें सफेद हो गई थीं। वह मूर्छित अवस्था में ही अपनी नन्हीं चोंच खोल कर जिह्वा को आगे-पीछे कर रहा था। घनश्याम ने उस छोटे से पक्षी को अपने गद्देदार सोफे पर रखा और झट से एक कटोरी में पानी ले आया। उसे अपनी अथेली पर लिया और रुई के गोले से उसके नन्हे से चोंच में पानी टपकाने लगा। उसने उसके शरीर को गीले कपड़े से ढांक दिया। जिससे उसका शरीर ठंडा हो गया था। वह पक्षी कुछ समय के लिए निर्जीव हो गया था। फिर उसमें चेतना आयी और कुछ क्षण बाद वह फिर शांत हो गया। घनश्याम के मुख से निकला, "मर गया; मैं बचा नहीं पाया। ऐ दोस्त मुझे माफ कर देना। मैं तुम्हारे लिए ज्यादा कुछ नहीं कर पाया। मेरे हाथ में होता तो मैं तुम्हें जिन्दा कर देता।" और घनश्याम की आँखें भर आयीं। उसने प्रकृति देवता को आह्वान किया।

"हे प्रकृति देवता! इस सृष्टि के संचालक! तुम्हीं से ही गति है...तुम्हीं से ही स्थिरता है। तुम्हीं ही प्राण देने वाले, तुम्हीं ही प्राण लेने वाले। इस नन्हे पक्षी के प्राण लौटा दो।"

घनश्याम की आँसुओं से भर आयी आँखों से आँसू की एक गर्म बूँद उस पक्षी के आँख पर टपक गई सहसा पक्षी में हलचल हुई। वह मृत्यु लोक से वापस लौट आया। ऐसे लग रहा था कि अब यह पक्षी नहीं बचेगा पर प्रकृति देवता ने घनश्याम की निश्छल, मानवतावादी प्रार्थना सुन ली थी। वह पक्षी उठने की कोशिश करने लगा था पर कमजोरी से वह उठ नहीं पाया था। ऐसे लग रहा था कि उसके पेट में कुछ भी नहीं है। घनश्याम भीतर से अनाज की कुछ दाने ले आया और उसकी नन्ही-सी चोंच में एक-एक दाने सरकाने लगा। वह भी अपनी चोंच में दाने भर कर पेट की आग का क्षमन कर रहा था। जब उसने कुछ दाने पेट में डाले तब उसमें कुछ शक्ति आयी और वह उठ खड़ा हुआ। उसने होश में आने के बाद देखा कि उसके सामने एक बहुत बड़ा साँवला-सा चेहरा उसे घूर कर देख रहा है। बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी काली मुछें, बड़ी-सी नाक, सबकुछ बड़ा था। उसने नीचे धरती पर रेंगते हुए मनुष्यों को आसमान से उड़ते हुए या पेड़ों की डाल पर बैठे कर देखा था पर किसी मनुष्य को इतनी निकटता से उसने कभी नहीं देखा था। वह सहसा घबराकर पीछे खिसकने लगा। किन्तु घनश्याम ने प्यार से उसके माथे को चूमा और हाथों से सहलाते हुए कहा, "अहं...ऐ नन्हे पक्षी...! घबराओं मत। मैं तुम्हें चोट नहीं पहुँचाऊँगा। मैंने तो तुम्हें बचाया है। तुम आसमान से मूर्छित हो गिर गये थे। मैं ही तुम्हें यहाँ घर के भीतर ले आया, पानी पिलाया और दाने खिलायें। इसीलिए तुम्हें मुझसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं। अब यदि तुम उड़ सकते हो तो तुम स्वतंत्र हो। चलो मैं तुम्हें बाहर तक छोड़ आऊँ।"

घनश्याम ने उसे अपनी हथेली पर उठाया और बाहर ले आया। उसने अपने पंख फैलाये और "टी-टिक-टी-टी-टिक-टी" की आवाज करता हुआ उड़ गया। घनश्याम कुछ समय तक उस दिशा की ओर देखता रहा जिस दिशा की ओर वह उड़ गया था। तब तक देखता रहा जब तक वह आँखों से ओझल न हो जाये। जब वह आँखों से ओझल हो गया तो भीतर आकर राहत की साँस ली। आज उसने एक अच्छा काम किया था; एक जीव की रक्षा की थी। इस बात की खुशी वह महसूस कर रहा था। वह सोच रहा था कि हम जब किसी दु:खी, पीड़ित की मदद बिना फल की अपेक्षा करते हैं और उसके चेहरे पर खुशी देखते हैं, तो उससे दुगुनी खुशी हमें मिलती है।

घनश्याम ने उसी दिन पेड़ की डाली पर पानी से भरे एक कटोरे को रस्सी से बाँध दिया। वैसे वह हर साल गर्मियों के मौसम में एक पानी का कटोरा बाँध दिया करता था, अबकी उस पक्षी के कारण बाँधना हुआ। नीचे जमीन पर कुछ दाने छितर दिए ताकि उस जैसा कोई भूला-भटका, भूखा-प्यासा पक्षी यहाँ आये,...तो वह यहाँ निराश न हो। घनश्याम भीतर कुछ पढ़ रहा था। तो एक आवाज उसे सुनाई दी। "टी-टिक-टी-टी-टिक-टी" उसने जैसे ही खिड़की से मुड़कर देखा तो वही नन्हा पक्षी कटोरे से पानी पी रहा है और टी-टिक-टी की आवाज कर रहा है। मानो वह कह रहा हो कि "घनश्याम लो मैं आ गया।"

वह रोज घनश्याम के आँगन में आता पानी पीता दाने चुगता, कुछ पल आँगन में फुदकता, घनश्याम की ओर देखता और फिर टी-टिक-टी की आवाज करता हुआ उड़ जाता है। अब की बार घनश्याम ने उसके लिए एक पुट्ठों से घर बनाया था। उस नन्हे से पक्षी को बहुत पसंद आया था। वह अब उसे ही अपना घर समझने लगा था। घनश्याम और उस पक्षी में एक अलग-सा अटूट रिश्ता बन गया था। घनश्याम को कभी-कभी लगता कि पहले जन्म में शायद हमारा कोई रिश्ता रहा होगा। वह अपनी भाषा में रोज घनश्याम को कुछ सुनाता था तो घनश्याम अपनी भाषा में उससे कुछ बातें करता था। अब दोनों को एक-दूसरे की भाषा समझ आने लगी थी। अब यह सिलसिला घनश्याम के रोजमर्रा का हिस्सा हो गया था।

एक दिन वह नन्हा पक्षी डाली पर बैठा कटोरे से पानी पीने में मगन था। घनश्याम ने उसका एक अच्छा-सा नाम रखा था—फरिश्ता। सच में ही वह घनश्याम के एकांत जीवन में फरिश्ता बनकर आया था। शायद इसीलिए उसका नाम फरिश्ता रखा था। फरिश्ता जब अपनी नन्ही चोंच में पानी भर कर गले से नीचे उतार रहा था। तब ऐसे में एक 10 साल का छोटा-मटमैला बालक गुलेल में कंकर भरकर फरिश्ता को निशाना बना रहा था। उसकी एक नाक से शेल्श्मा बहे जा रहा था। उसने बायें हाथ में गुलेल बड़ी मजबूती से पकड़ा और दायें हाथ से कंकर भरा रब्बल

खींचा। वह कंकर उस दिशा में छोड़ने ही वाला था कि एकाएक घनश्याम की उस बालक पर नजर पड़ी। घनश्याम पलक झपकते ही उस बालक की ओर दौड़ा उसके हाथ से गुलेल छिनते हुए जोर से चिल्लाया, "अरे पागल!...क्या कर रहा है? उस नन्हे पक्षी को मार डालेगा क्या? चल भाग यहाँ से...वर्ना इसी गुलेल में पत्थर भर के तेरा सर फोड़ दूँगा।" और वह मटमैला बालक घनश्याम के रोद्र रूप को देख कर दुम-दबाकर पैर उछालता हुआ भाग गया। दूर गली के किनारे दीवार के पीछे ओझल हो गया। कुछ क्षण बाद धीरे से उसने अपनी गर्दन बाहर निकाली और घनश्याम की ओर टुकुर-टुकुर घबरायी नजर से देखने लगा। घनश्याम ने ओंठ चबाये और गर्दन से इधर आने के लिए कहा पर वह नहीं आया वह और भी घबरा गया। घनश्याम ने उसकी ओर गुलेल फेंका और कहा, "दूसरी बार, इधर नजर आये तो टाँगे तोड़ दूँगा अबकी छोड़ रहा हूँ। ऐसे पक्षियों के प्राण नहीं लिए जाते। भला गुलेल में पत्थर भर कर कोई तुम्हारा शिकार करे तो कैसे लगेगा?" और घनश्याम भीतर आ गया। घनश्याम को भीतर जाते देख वह मटमैला बालक धीरे से आया और गुलेल उठाकर "मैं अगली बार ऐसे नहीं करूँगा अंकल।" कहता हुआ भाग गया और गली के उस पार दीवार के पीछे ओझल हो गया।

घनश्याम के चेहरे पर उसके इस प्रतिक्रिया से मुस्कान की एक लकीर खिंच गई। फरिश्ता सारी घटना को अपनी आँखों से देख रहा था। घनश्याम ने उसकी रक्षा उस बालक से की थी। घनश्याम को देख कर वह 'टी-टिक-टी' की आवाज निकालने लगा था। वह अपनी भाषा में घनश्याम से धन्यवाद ज्ञापित कर रहा था। घनश्याम ने भी समझ लिया था कि फरिश्ता क्या कहना चाहता है। घनश्याम सोचने लगा कि हम पक्षियों के साथ कुछ पल बिताते हैं तो उनकी भाषा हमें अपने आप समझने लगती है और हमारी भाषा पक्षियों, जीवों को समझने लगती है। भाषा अलग है किन्तु भावनाएँ एक ही हैं। घनश्याम भीतर अपने कमरे में चला गया और किसी कार्य में व्यस्त हो गया। उधर फरिश्ता ने भी पंख फैलाए 'टी-टिक-टी' करता हुआ, आसमान में उड़ गया।

उस गुलेल की घटना से घनश्याम को अपना बचपन याद आ गया। वह भी उस बालक की तरह अपने गाँव की ओर गुलेल लेकर पक्षियों को निशाना बनाये फिरता था। उसे याद है, जब वह 14 साल का था हॉफ शर्ट और हॉफ पेंट अर्थात चड्डी पहनता था। कभी-कभार उसके भी नाक से 'लेश्मा बहता था पर उसने तब तक नाक साफ करना अच्छे से सीख लिया था। एक बार जब उसने अपने से बड़ो को छर्रे की बंदूक और गुलेल से पक्षी का शिकार करते देखा तो उस पर भी गुलेल से पक्षियों का शिकार करने का भूत सवार हो गया था। उसने बबूल की टहनी तोड़ी उसे अच्छी तरह से साफ किया। कहीं से साईकिल रिपेअर करने वाले के पास से

ट्यूब के रब्बर का एक लम्बा और पंचर ठीक किये जाने वाला चमड़े का टुकड़ा ले आया। रब्बर को चमड़े के टुकड़े से बाँधा और फिर तिकोनी लकड़ी पर कस दिया हो गई तैयार गुलेल। वह बेहद खुश हुआ। जैसे उसने कोई शुरुवाती लड़ाई में जीत हासिल कर ली हो।

अब समय था शिकार पर जाने का...। उसने अपनी चड्डी के दोनों जेबों में कंकर भर लिए जैसे वह कोई कारतूस से लेस हो गया हो और निकल पड़ा। पेड़-दर-पेड़, नदी-नाले, खेत-खलियान, जंगल पर उसे निराशा ही हाथ लगी थी। तब किसी ने बताया था कि पहले उसे निशाना लगाना सीखना होगा। उसके एक उससे बड़ी उम्र वाले मित्र ने उसे निशाना लगाना सिखाया। बाईं आँख बंद कर नाक की सीध पर निशाना लगाना चाहिये। उसने पहले खूब प्रैक्टिस की...। जब उसे लगा कि अब वह तैयार हो गया है। तब वह फिर से कंकरों से लेस होकर निशाना लगाने के लिए निकल पड़ा था।

वह पेड़-दर-पेड़ पर पक्षी को खोजता हुआ नदी की ओर निकल पड़ा। गाँव से कुछ दूरी पर नदी थी। वहाँ जाने के लिए तब पक्की सड़क नहीं बनी थी। पगडंडी से लोग वहाँ आया-जाया करते थे। कुछ स्नान के लिए, तो कुछ कपड़े धोने-सुखाने के लिए, तो कुछ नदी से होते हुए खेतों के लिए। 14 साल का घनश्याम पगडंडी से होते हुए नदी तट पर पहुँचा। अब तक पगडंडी के किनारे वालों पेड़ों को उसने छान डाला था पर उस दिन कोई भी पक्षी उसे नजर नहीं आ रहा था। जहाँ एकआध पक्षी नजर आया पर निशाना चुक गया। उसे लगा कि अभी ट्रेनिंग पूरी नहीं हुई है वह निराश हुआ। नदी में बहने वाले पानी और बहते पानी में बालकों और बड़े लडकों को नहाते देख उसके भी मन में आया कि वह भी नहाले। उसने अपने कपड़े उतारे और पानी में छलांग लगाई। वह और बच्चों की तरह सम्पूर्ण वस्त्रहीन था। उसने तैराकी भी सीख ली थी। कुछ आधे घंटे तक तैराकी करने के बाद वह बाहर आया। धूप में अपने आपको सुखाया और कपड़े पहन लिए।

नदी में एक बड़ा-सा पत्थर था। लोग उसे हाथी पत्थर कहते थे उसकी छाह में जा बैठा। ठीक हाथी पत्थर के सामने लम्बा मगरमच्छ पत्थर था। एक पक्षी उड़ता हुआ वहाँ आया। उस पत्थर के खाँचे में जमा पानी अपनी चोंच में भर-भर पीने लगा। यह उसके पास अच्छा मौका था। उसने बजरंगबली का नाम लिया जेब से कंकर निकाला गुलेल में भरा बायें हाथ से कसके पकड़ा और बाँयी आँख बंद करके दायें हाथ से खिंचा। कंकर गुलेल से छुट पड़ा और ठीक उस पक्षी के गर्दन पर जा लगा। जैसे ही गर्दन पर कंकर लगा वह अर्धमूर्छित हो नीचे लुढ़क गया। उस समय उसकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था। वह दौड़ता हुआ गया और उस पक्षी को उठा लिया। वह भीतर से जख्मी पक्षी बेबस था। उसने समझ लिया था कि अब इसके

हाथों से छूटना नामुनकिन है। वह अपनी चोंच खोल जिह्वा को आगे-पीछे करने लगा था। कुछ समय बाद उसने अपनी आँखें सफेद कर ली थी। वह मरता हुआ-सा नजर आ रहा था। अचानक खुशी के भाव निराशा और दुःख में बदल गये थे। उसने भीतर ही भीतर सोचा।

"मैंने ऐसे तो नहीं सोचा था। मैं तुम्हें मार डालना नहीं चाहता था, मैं तुम्हें पकड़ कर तुम्हारे साथ खेलना चाहता था।"

वह दौड़ता हुआ उसे अपने घर ले आया। जब माँ ने उस पक्षी को उसके हाथ में देखा तो उसने डाँटते हुए कहा, "हे भगवान, कहाँ से लाया तू? कहीं गुलेल से इसे तूने मार तो नहीं दिया? अब पाप लगेगा तुझे...इस पक्षी को मार दिया तूने...!" घनश्याम घबराया हुआ था उसके ओंठ सुख रहे थे। अभी-भी उसमें जान बची थी। उसने आँगन में रखे बोरी पर उसे रखा और एक लोटे में पानी भर लाया। उसे बूँद-बूँद पानी पिलाया, कुछ दाने खिलाये। तब वह थोड़ा-सा ठीक हुआ। उसने उसके लिए टिन के पेत्र के पीछे एक घर बनाया। कुछ समय उसके साथ बिताने के बाद वह बाहर घूमने चला गया। जब वह एक घंटे बाद लौटा तो माँ ने बताया, "बेटा, वह पक्षी मर गया है!"

वह दौड़ता हुआ उस पक्षी के पास गया। उसने अपने हथेली पर उसे उठाया वह निर्जीव हो गया था। उसने अपनी गर्दन नीचे डाल दी थी। घनश्याम ने उसे हिलाया-पानी चोंच में डाला पर वह उठा नहीं। उसने ईश्वर से कहा फिर भी वह उठा नहीं। वह ईश्वर के घर चला गया था। घनश्याम को अपने आप पर पश्चाताप हो रहा था। उसकी वजह से एक पक्षी की जान चली गई वह फुट-फुट कर रोने लगा था। पास में पड़ी लकड़ी उठाई और अपने हाथों को सजा देने लगा था। वह अपने हाथों को सजा देना चाहता था। इन्हीं हाथों ने उस पक्षी की जान ली थी। माँ ने उसके हाथों की लकड़ी छीनते हुए उसे समझाया कि, "बेटा, अब जो हुआ सो हुआ। तुझे जितनी सजा मिलनी थी सो मिल गयी। बेटा, पश्चाताप से बढ़कर और कोई सजा नहीं हो सकती पर अब तू कसम खा कि आज के बाद तू किसी पक्षी की हत्या नहीं करेगा। पशु-पक्षी, प्राणियों से प्रेम करेगा। वे बोल नहीं पाते हैं किन्तु वे भी हमारी ही तरह होते हैं। वे भी हँसते हैं वे भी रोते हैं। वे हमारे ही तरह होते हैं।"

घनश्याम समझ गया था। उसने कसम खायी कि आज के बाद वह कभी किसी पक्षी को चोट नहीं पहुँचायेगा। वह पशु-पक्षियों से प्रेम करेगा। उसने उस पक्षी के लिए एक गढ़ढा खोदा और उसे उसमें गाढ़ दिया। उसके ही करीब एक पौधा लगा दिया था। उस दिन वह बहुत रोता रहा था उसने आँखों में आँसू भरकर उसे अंतिम विदाई दी थी। उस दिन उसका खाने में मन नहीं लग रहा था। वह देर रात तक जागते रहा और फिर सो गया।

घनश्याम उन्हीं यादों से वापस लौट आया था। अब वह गाँव से दूर शहर में रहने वाला समझदार घनश्याम था, संवेदनशील, प्रकृति प्रेमी। उन दिनों सूर्य की तपन और भी बढ़ रही थी। पानी की किल्लत तो थी पर मनुष्य के साथ जीव-जंतुओं को तेज धूप, लू, गर्मी का सामना करना पड़ रहा था। तेज धूप में बाहर निकलो तो लू लग जाने का भय था। जिसमें बीमार पड़ने और मरने की अवस्था हो गयी थी।

रोज की तरह एक दिन फरिश्ता बाहर से उड़कर डाली पर आ बैठा। कटोरे में रखे पानी को पिया फिर दाना चुगा और आँगन में फुदकने लगा। फिर खिड़की पर आकर बैठ गया। जहाँ से घनश्याम पढ़ाई करता या कुछ काम करता नजर आता था। आज घनश्याम कहीं नजर नहीं आया।

"टी-टिक-टी-टी-टिक-टी" की आवाज करने लगा था। मानो वह घनश्याम को आवाज लगा रहा हो। "घनश्याम तुम कहाँ हो? मैं आ गया हूँ।"

वह घर के चहुँ ओर उड़ने लगा था। वह सभी खिड़कियों पर जाकर देख रहा था कि घनश्याम वहीं कहीं होगा पर घनश्याम कहीं नजर नहीं आ रहा था। सहसा घर के पिछली वाली खिड़की से जब उसने भीतर झाँका तो देखा कि घनश्याम बिस्तर पर लेटा है। घनश्याम को लू लग गई थी वह बीमार था। फरिश्ते को समझने में देर न लगी की वह बीमार है। वह खिड़की से भीतर आकर पास वाले टेबल पर आकर बैठ गया। और "टी-टिक-टी-टी-टिक-टी-टी-टी-टी-टी" की आवाज निकालने लगा। वह अपनी भाषा में घनश्याम से अपना हाल पूछ रहा था। वह कहना चाह रहा था कि, "घनश्याम तुम कैसे हो? तुम्हारी तबियत कैसी है? बाहर नहीं दिखाई दिए तो देखने चला आया तुम्हें बुरा तो नहीं लगा उठो मुझसे बातें करो।" पर घनश्याम आँखें बंद किए सोये हुए था। जब घनश्याम उठता हुआ नजर नहीं आया तो उसकी आँखों में पानी भर आया। वह खिड़की से बाहर उड़ गया और अपनी चोंच में कुछ दाने भर ले आया। दानों को उसने उसके मुँह के पास रख दिया। फिर उड़ गया और नन्हीं चोंच में पानी भर ले आया और उसके सूखे ओंठो पर पानी की बूँद को टपका दिया। फरिश्ते को पता था कि न उसके दाने से उसकी भूख मिटेगी न ही पानी की एक बूँद से। फिर भी वह उसे जगाने का प्रयास कर रहा था। जब इतना करने के बाद भी वह जागा नहीं, तब उसे लगा कि घनश्याम मर गया है। उसका निकटतम उसे छोड़ गया है। तब उसकी आँखों में पानी भर आया। उसकी आँख से पानी की लघुत्तम बूँद घनश्याम के चेहरे पर लुढ़क गई। तब सहसा घनश्याम जाग गया। घनश्याम को उठते देख फरिश्ते की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा।

मेरे पेट में बच्चादानी नहीं है

"क्या यहाँ कोई बैठा है? मैं बैठ सकती हूँ?" जय के कानों तक वह आवाज पहुँचा ही था कि उसने पलट कर उस लड़की की ओर देखा और उसके मस्तिष्क ने स्वरयंत्र को आज्ञा दी, "ज्योति तुम?" "अरे, जय तुम?" उसने मुस्कुराते हुए हाथ दिखाते हुए कहा, "मैं अभी आयी।" और वह ट्रेन से बाहर उतर गई।

जय चकित रह गया। उसे लगा कि उसने कोई गलती तो नहीं कर दी। जिससे वह नाराज होकर उतर गई पर वह तो मुस्कुरा रही थी। शायद मुझे आभास हुआ होगा होता है ऐसा कभी-कभी। छोटे-छोटे शहरों में ऐसी छोटी-छोटी बातें होती ही रहती हैं। उसने अपने हृदय और मस्तिष्क को फिल्मी डायलॉग से समझाया। वह अपने आप को समझा ही रहा था कि फिर से ज्योति की आवाज ट्रेन की खिड़की से आयी। "जय!"

जय ने खिड़की की ओर देखा। उसे लगा की यह भी आभास होगा। वह बिना कुछ उत्तर दिये फिर से पहली वाले दिशा में बैठ गया।

"जय! इधर देखो...माँ!...वो देखो...जय वहाँ बैठा है वह मेरे साथ है। अब चिंता की कोई बात नहीं। तुम जानती हो ना उसे वह कॉलेज के दिनों में अपने घर आया करता था। वह जो आते ही आपके पाँव पकड़ लेता था और कहता था, "जब तक माँ आशीर्वाद नहीं देगी, तब तक मैं आपके पैर नहीं छोड़ूँगा।"

ज्योति की माँ ने अपना चश्मा साफ करते हुए गौर से जय को देखा और कहा, "यह तो वही है। हुबहू जय।"

"माँ हुबहू वहीं नहीं अपना जय ही है।"

"माँ ने अपनी आँख का चश्मा उतारा। पल्लू से पोंछते...मुस्कुराते हुए...तिरछी नजर से ज्योति की ओर देखते हुए कहा, "हाँ, बेटा हाँ! मैंने जय को देखते ही पहचान लिया था, मैं तो मजाक कर रही थी। मैं तो उसे बिना चश्मे के भीड़ में भी

पहचान लूँगी।" इतनी बात होते न होते जय ट्रेन से कब नीचे उतरा और माँ के पाँव पकड़ के कहने लगा, "जब तक माँ आशीर्वाद नहीं देगी, तब तक मैं आपके पैर नहीं छोड़ूँगा।"

आस-पास के सारे लोग उसे देख रहे थे। माँ के आँसुओं ने नेत्र द्वार से ऐसे प्रवेश किया जैसे गंगा-जमना नदियाँ समन्दर से मिलने के लिए तेज दौड़ती हैं। उसने अपने आँसुओं को और अपने काँपने वाले होंठों को पल्लू से दबा लिया और उसी दबी स्वर में कहा, "इतने साल हो गये जय, तू अब तक बिलकुल भी नहीं बदला; जस का तस है।"

"माँ ने एक साथ झूठा गुस्सा, प्यार, हँसी के मिश्रण से कहा, "धत्त! जा मैं तुझे आशीर्वाद नहीं देती। पहले पैर छोड़...।"

"नहीं, माँ...मैं पैर नहीं छोड़ूँगा। ना माँ ना मुझसे ऐसी बात न कर माँ...। माँ ये आशीर्वाद मुझे दे दे माँ...मैं कह रहा हूँ...ये आशीर्वाद मुझे दे दे माँ!"

जय ने फिर से फिल्मी अंदाज में माँ से आशीर्वाद माँगा। उसने तब तक माँ के पैरों को पकड़े रखा, जब तक उसने आशीर्वाद के लिए अपना हाथ उठाकर जय के सर पर न रख दिया।

"ले, मैं तुझे आशीर्वाद दे रही हूँ। बालक मैं तेरी तपस्या से प्रसन्न हुई। माँग जो माँगना है। तथास्तु!"

माँ, जय, ज्योति तीनों एक साथ हँस पड़े। ट्रेन के बाहर और भीतर से यह फिल्मी ड्रामा लोग देख रहे थे। वे आपस में चर्चा कर रहे थे कि माता-पुत्र का रिश्ता हो तो ऐसा हो। कुछ स्त्रियों ने अपनी आँखों से निकलने वाले आँसुओं को बाहर आने से पहले ही पल्लू और रुमाल के बाँध से रोक दिया था। वे टी.वी. धारावाहिक-सा आश्रुमय आनंद उठा रहे थे। जब कुछ पल बाद हँसी रूक गयी तब माँ ने जय से पूछा, "बेटा तेरी शादी हो गयी क्या?"

"जी माँ, मेरी शादी हो गयी पर मैं तुम्हें बुला नहीं पाया।"

"चल छोड़ कोई बात नहीं। बता कुछ बाल-बच्चे हैं कि नहीं?"

"हैं क्यों नहीं? हैं ना! दो बच्चे हैं। बिलकुल अपनी दादी और नानी पर गये हैं दोनों।"

"बेटा, अब तू कहाँ रहता है?"

"मैं...यहीं...नांदेड में रहता हूँ।"

"तो तू मुझे घर कब बुला रहा है। तू मुझे अपने घर बुलायेगा न? मैं तेरे बच्चों को देखना चाहती हूँ। उनके साथ खेलना चाहती हूँ। क्या मैं उनके साथ खेल सकती हूँ?"

"हाँ-हाँ क्यों नहीं! अब तो मैं मुंबई जा रहा हूँ। जैसे मैं लौटकर आऊँगा तुम्हें

अपने घर लेता जाऊँगा।"

ट्रेन ने सीटी बजा दी। नेविदिका के सूचना ने सबके कानों को कुछ समय के लिए अपनी और खींच लिया था। जैसे ही निवेदिका की आवाज बंद हुई। ज्योति ने कहा, "माँ, तुम भी...कहीं भी शुरू हो जाती हो। ट्रेन छुट रही है माँ...।" दोनों ट्रेन के भीतर चढ़ गये। जल्द से खिड़की के पास आकर बैठ गये ताकि उन्हें 'बाय' कहा जाय। ट्रेन ने प्लेटफार्म छोड़ना शुरू कर दिया ज्योति ने खिड़की से हाथ बाहर निकाला और माँ को 'बाय' करने लगी।

"माँ, अब घर जाना और निश्चिन्त रहना जय मेरे साथ है। चिंता मत करना।" माँ ने ज्योति की बजाय जय की ओर देखकर कहा, "जय बेटा, मैं तेरा इंतजार करूँगी मुझे अपने घर ले जाना। मुझे तेरे बेटे के साथ खेलना है मैं खिलौना लेकर आऊँगी।"

ट्रेन ने धीरे-धीरे प्लेट फार्म छोड़ दिया। माँ की तेज आवाज धीरे-धीरे धुँधली होती गई। ज्योति के सम्मुख माँ द्वारा जय से पूछा गया सवाल ज्योति के हृदय को आहत कर गया था। उसने अपने आँसुओं पर मुस्कान की चादर ओढ़ली थी। उसमें अब वीरों का-सा साहस आ चुका था।

"जय, कैसे हो? गड़बड़ में मैं कुछ बोल नहीं पायी। हम आज कितने सालों बाद मिल रहे हैं ना!" अपने आप को दिखाने के अंदाज में, "खुद ही देख लो... हम कल भी ऐसे ही थे और आज भी ऐसे ही हैं। बिलकुल स्मार्ट लग रहे हैं ना?"

"हाँ, जय...तुम आज भी वही हो। तनिक भी परिवर्तन नहीं आया है। बिलकुल स्मार्ट...!"

दोनों ने हाथ में हाथ मिलाया...मुठ्ठी बंद कर मुठ्ठियों को टकराया और पुरानी यादों के साथ चेहरे खिल उठे। कुछ क्षण खिड़की के बाहर के नजारों को आँखों में भर मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विचारों ने होंठों को धीरे से स्पर्श किया। "ज्योति तुम कैसे हो? कई सालों बाद हम मिल रहे हैं। पहले तुम पतली थी।" "अब?" "अब...थोड़ा कम पतली हो।" वह मुस्कुराने लगी थी।

"ज्योति, क्या तुम मुझसे कुछ छिपा रही हो? मुझे रह-रह कर ऐसा क्यों लग रहा है कि तुम भीतर से बहुत दुखी हो...और ऊपर से तुमने हँसी की चादर ओडली हो। कुछ बात है, जो तुम मुझे बताना नहीं चाहती।" झूठी हँसी की खुशबू बिखेरते हुए, "नहीं तो, ऐसी कोई बात नहीं। मैं एकदम मस्त हूँ। अपनी जिन्दगी में बहुत खुश हूँ। मुझे रोहित जैसा हैंडसम, स्मार्ट और नौकरी वाला पति मिला है। वह मुझसे बहुत प्रेम करता है। मुझे फूलों-सा रखता। मुझे कभी अकेला नहीं छोड़ता। बस ...इस बार वह ऑफिस के कामों में व्यस्त था इसीलिए...वरना वह इस वक्त मेरे साथ होता। वह मेरी इतनी चिंता करता है कि हर घंटे में उसका एक फोन काल

तो होता ही है। अभी स्टेशन पर ही तो उसका फोन आया था। कुल मिलाकर हमारी जिन्दगी फाइव स्टार चल रही है और तुम कहते हो कि मैं कुछ छिपा रही हूँ।" जय ज्योति का सच्चा मित्र था और एक सच्चा मित्र अपने मित्र की दिल की बात समझ ही लेता है। उसे भी समझने में देर न लगी थी। ज्योति ने सिर्फ अपने पति का जिक्र किया था। रोहित उससे बेहद प्यार करता है, यह बात भले ही सही हो किन्तु और एक बात थी। उसने सिर्फ दोनों का ही उल्लेख किया था; संतान का नहीं। इतने साल गुजर गए और उन्हें संतान नहीं? ऐसा ही तो अर्थ ग्रहण कर रहा था...जय।

"ज्योति, तुमने रोहित का तो उल्लेख किया पर बच्चों का नहीं? कितने बच्चे हैं तुम्हारे?" उसने निराशात्मक हँसी हँसते हुए कहा, "हमने फेमिली प्लानिंग किया हुआ है।"

"झूठ मत बोलो ज्योति। इतने साल कोई फेमिली प्लानिंग भला करता है। कोई।"

"अरे, डॉक्टर ने कहा है कि मेरे पेट में बच्चादानी नहीं है। मैं माँ नहीं बन सकती।" ज्योति का हाथ पकड़ते हुए, "ओ सॉरी ज्योति, शायद मैंने तुम्हारा दिल दुखाया।"

"नहीं, कोई बात नहीं जय। तुम गिल्टी फिल मत करना। जो है सो है। तो हम इस पर क्या कर सकते हैं पर मुझे अब कुछ लगता नहीं। पहले बहुत दुखी रहा करती थी कि मेरी कोई संतान क्यों नहीं है। मैंने अपने पति से यहाँ तक कहा था कि रोहित तुम दूसरी शादी कर लेना पर उस दिन के बाद उसने मुझसे पूरे दो दिनों तक बात नहीं की और ठीक से खाना भी नहीं खाया। उसने मुझसे वचन लिया कि ऐसी बात फिर कभी नहीं करूँगी तब जाकर वह माना...। मैं बहुत खुश नसीब हूँ कि मुझे रोहित जैसा पति मिला है अब वही मेरा बच्चा है। वह भी रोज मुझसे रोज बच्चों जैसी जिद करता है, शरारत करता है। उसे रोज मेरे हाथों से खाना पसंद है। वह मेरे ही हाथों से दूध पीता है और बहुत कुछ बच्चों वाली हरकत।"

ज्योति बातों में खो गई थी। ज्योति और रोहित की फ़िल्म जय की नजरों के सामने चल रही थी। रोहित ज्योति का बच्चा बना हुआ था और ज्योति रोहित का बच्चा। दोनों ने खुश रहने का एक नया उपाय खोज निकाला था। ज्योति को पढ़ने का बहुत शोक था। उसमें वह एक नाटक बहुत चाव से पढ़ती थी। सिर्फ पढ़ती ही नहीं थी बल्कि दोनों ने उसे रंगमंच पर प्रस्तुत भी किया। दोनों भी अभिनय करने में माहिर थे ऐसा लगता था कि मानो वह नाटक उन्हीं के लिए बना था। वह नाटक इतना प्रसिद्ध हुआ कि हर एक की जबान पर दोनों का नाम अट्केलिया करते रहता था। आखिर उस नाटक में ऐसी क्या बात थी कि वह नाटक उनके जीवन का एक हिस्सा बन गया था और एक सुख दिया करता था। नाटक में एक ऐसा दाम्पत्य

है जो एक-दूसरे से बेहद प्रेम करता है और उन्हें एक मासूम-सा, नटखट-सा बालक होता है। जो कृष्ण की भांति बाल-लीलाएँ करता है। नाटक दो हिस्से में बंटा हुआ था। पहला हिस्सा बाल लीला और जवान होने तक का और दूसरा हिस्सा नौकरी और विवाह का हिस्सा। पहला हिस्सा दोनों को बेहद पसंद था किन्तु दूसरा हिस्सा उन्हें उतना पसंद नहीं था क्योंकि दूसरे हिस्से में लड़के का विवाह होने के बाद वह अपने ही माता-पिता को घर के बाहर निकाल देना चाहता है। इस पर माता-पिता को अपने सनातन होने पर पश्चाताप होता है। वे सोचते हैं कि "ऐसी संतान होने से अच्छा है कि निसंतान होना।" अंत में उनके मुख से निकलता है। "मैं तेरी संतान और तू मेरी संतान" बातों ही बातों में कब औरंगाबाद स्टेशन कब आया पता ही नहीं चला था। रोहित स्टेशन पर ज्योति का इंतजार कर रहा था। ज्योति ने रोहित को आवाज लगायी।

"पापा..."

रोहित ने ज्योति को देखा और कहा, "मम्मा, मैं तुम्हारा कब से इंतजार कर रहा हूँ। चलो अब जल्दी घर चलते है मुझे भूख लगी है।"

ट्रेन मुंबई की और रवाना हो चुकी थी। जय की आँखों में आँसू और खुशी ने दोस्ती कर ली थी।

जब खोया उसे विदेश में

जब खोया उसे विदेश में...मतलब प्रियसी या प्रियकर नहीं पासपोर्ट को। उस समय वह किसी प्रियकर या प्रियसी से कम भी तो नहीं था। पासपोर्ट मतलब...ना...ना पासपोर्ट फोटो नहीं! विदेश जाने का परवाना पारपत्र...पासपोर्ट। जब से पुष्पा को यह पता चला कि सबके पासपोर्ट सुरक्षित हैं और उसका ही पासपोर्ट कम्बोडिया की उस धरती पर खो गया है, उसकी जान मानो गले में अटक गई थी। पैरों तले की जमीन खिसक गई थी। सबकुछ नजरों के सामने घूम रहा था। सबके चेहरे जो उसे अब तक अपने लग रहे थे। एका-एक बड़े-बड़े विशाल आकार धारण कर चुके थे। जो चेहरे अपने-से और आकर्षक लग रहे थे। वे अब किसी डरावनी फ़िल्म के विलेन के किरदार समान भयानक लग रहे थे। पुष्पा और भी आत्मग्लानी से भर गई थी। सब भारत जाएँगे और उसे यहाँ के किसी जेल में सड़ना पड़ेगा। उसकी नज़रों के सामने भविष्य के काल्पनिक डरावने चलचित्र तीव्रगति से चल रहे थे। उसे कम्बोडियाई पुलिस बस से नीचे उतार रही है। उसकी नाजुक कलाइयों में लोहे से सक्त हथकड़ियाँ पहनाई जा रही हैं सब लोग तमाशा देख रहे हैं। कोई भी उसे रोक नहीं रहे हैं। उसकी आँखें आँसुओं से सिक्त हो गए हैं। जेल में ले जाकर उसे ठूस दिया गया है, जेल की वह जगह गंदगी से भरी सुनसान है। उसे वहाँ प्रताड़ित किया जा रहा है बारी-बारी से महिला पुलिस उससे पूछताछ कर रहे हैं। उसे आतंकवादी, जासूस, स्मगलर के रूप में प्रताड़ित करने वाली आवाजें और चेहरे नजर आने लगे थे।

पुष्पा एक सुंदर पुष्प की भाँति हस्य रूपी सुगंध फैलाने वाली एक कोमलअंगी लड़की थी। वह जितनी खूबसूरत थी उतनी ही खूबसूरत उसकी...हँसी भी थी। उसकी हँसी मोहित करने वाली। उसकी मीठी आवाज कानों में रस घोल देने वाली थी। वह एक सफल कवियत्री, गीतकार एवं साहित्यकार थी। अल्प समय में ही वह

सबकी चहेती बन गई थी। किन्तु उस दिन अचानक उसके पासपोर्ट खो जाने के कारण उसकी हँसती हुई आँखों से आँसुओं की गंगा-जमना-सरस्वती की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही थी। उसका सिसकियाँ भरना भय और शर्म से मिश्रित था। उसे रह-रहकर लगता कि उसके साथ मजाक किया ज़ा रहा है। शुरुआत में वह हँस-हँस कर सबको पूछने लगी थी कि "मुझे पता है, आपमें से ही किसी ने मेरा पासपोर्ट छुपा रखा है! अब दे भी दो!" पर अब साबित हो चुका था कि उसके साथ ऐसा मजाक नहीं किया गया है। एक पल में वह घबरा जाती तो दूजे पल में अपने ही आपको सांतवना देती, "जब इतने सारे लोग हैं, मुझे कुछ नहीं होगा। किसी-न-किसी तरह मुझे भी भारत ले जाया जाएगा।"

जब वह अश्रु, भय, शर्म, संकोच में डूबी हुई थी। उसे याद आया कि अभी कुछ समय पहले हम कितने खुश थे। सभी मुझे प्रोत्साहित कर रहे थे मेरे गीत, कविताओं से प्रभावित मंत्रमुग्ध हो, चाहने लगे थे। हँसी-ठिठोली का माहौल था। किसी ने उसे बहन, दीदी, मैडम या पुष्पा नाम से पुकारा था, वह छा गई थी। उस ए.सी. बस की खिड़कियों से कम्बोडिया के सुन्दर दृश्यों को देखा जा सकता था। वह सोच रही थी कि हम व्हिएतनाम से कम्बोडिया, थाईलैंड और फिर भारत अपने घर पहुँच जाएँगे। उस दिन बस ने व्हिएतनाम से कम्बोडिया के बोर्डर में प्रवेश कर लिया था। चावल के खेत, पहाड़, कहीं-कहीं जंगल के सुंदर दृश्यों को देखा जा सकता था। सबने यह सुन रखा था कि यहाँ सफेद हाथी होते हैं। तो सब इस प्रयास में थे कि कहीं से वह सफेद हाथी दिख जाये। हाथी नहीं दिखा पर थाईलैंड की सीमा से सौ किलोमीटर पहले हाथी से भी बड़ी उस बस को एकाएक रोक दिया गया था। बस रुकते ही कईयों ने अपने अनुमान से बस रुकने की सम्भावनात्मक कारणों को अभिव्यक्त करना आरम्भ कर दिया था।

"अरे भाई, यह बस क्यों रुक गई?"

"शायद, इंटरवेल के लिए रुकी हो।"

"लगता है, यहाँ कोई होटल होगा। जहाँ हमें भोजन के लिए ले जाया जाएगा पर यहाँ तो कोई होटल नजर नहीं आता। यहाँ तो कुछ देहाती कम्बोडियाई घर नजर आ रहे हैं।"

"बस में कुछ गड़बड़ी हो गई होगी।"

"क्या हुआ ड्राइवर जी, बस क्यों रोक दी गई?"

"मुझे पता नहीं...पिछली वाली बस से फोन आया था...रूकने के लिए कहा है...इसीलिए रोक दी।"

बस लगभग बीस मिनट तक रूकने के बाद। सबके सब्र का बाँध टूट चुका था। वे गुस्से में आ गये थे कि बस क्यों रोक दी गई है। हम आगे क्यों नहीं बढ़

पा रहे हैं, हमें भूख भी लग रही है। जब बस में इस बात को लेकर हाहाकार मचा हुआ था। तब एक युवा साहित्यकार शिव जी ने कमान सम्भाल ली उन्होंने कहा, "शांत बैठिये, जितने आप चिंतित और गुस्से में हैं, मैं भी उतना ही चिंतित और गुस्से में हूँ। मैं जाकर देखता हूँ कि माजरा क्या है। बस इतनी देर तक क्यों रोक दी गई है।"

शिव जी नेतृत्व कर रहे थे। शिव जी के बलवान शरीर के चेहरे पर लम्बी-लम्बी मूँछें उनके वीरता को दर्शाने वाले थे। वे जितने संयमी थे, उतने ही क्रोधी भी। गलत बात न उनकी मूँछें हजम कर सकती थी और न ही वे...। उन्होंने मूँछों पर ताव दी और चल पड़े माजरा क्या है, देखने के लिए। जब वे पिछली वाली बस में घुस गये तब उन्हें पता चला कि सहयात्रियों में से किसी एक का पासपोर्ट खो गया है। लगभग सौ पासपोर्ट में से एक पासपोर्ट कम था। अब तक पिछली वाली बस में तलाश जारी थी। पिछली वाली बस में सबके पासपोर्ट थे। अब बारी थी...अगली बस की शिव और उनके साथ यात्रा संचालक थे, उनके हाथ में पासपोर्ट था। शिव ने बस में लगे हुए माइक को हाथ में लिया और सबको सूचित करते हुए कहा, "मेरे साहित्यकार मित्रों, भाइयों और बहनों आपको यह सूचित करते हुए बड़ा खेद हो रहा है कि हम में से किसी एक का पासपोर्ट मिल नहीं रहा है। अर्थात कहीं खो गया है। अब तक पिछली वाली बस में खोज जारी थी किन्तु वहाँ सबके पासपोर्ट सुरक्षित हैं। अब जिसका भी पासपोर्ट खोया है, वह इसी बस के किसी यात्री का है। हमारे पास जिनके पासपोर्ट हैं, हम उनके एक-एक कर नाम लेंगे और पासपोर्ट उनके हाथों में सोंप देंगे।"

सभी ने शिव जी की बातों को गौर से सूना था। जैसे ही उन्हें यह पता चला कि उनकी बस में से किसी एक का पासपोर्ट खो गया है। तब सब सकपका गये थे सबके दिलों की धड़कने तेज हो गयी थीं। सबको यही लग रहा था कि कहीं उनका ही पासपोर्ट गुम तो नहीं हुआ है। सबके नजरों के सम्मुख जेल, पुलिस नजर आ रहे थे। सभी अपने-अपने ईश्वर, आराध्यों का नाम ले रहे थे। पासपोर्ट में जिनका नाम सुरक्षित होता वे राहत की साँस ले रहे थे। उनकी खुशी देखते ही बन रही थी। जब एक वरिष्ठ हँस मुख साहित्यकार जिसके मुख मंडल पर हमेशा हँसी बिराजमान रहती थी। वह ओरों के लिए जिन्दादिली का उदाहरण थी। वह अपने दोनों हाथ जोड़ आँखें बंद कर ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी।

"हे भोलेनाथ, मेरा पासपोर्ट मुझे मिला दो मैं सव्वा किलो के पेड़े आपके चरणों में चढ़ाऊँगी।"

"करुणा जी, आपका पासपोर्ट सुरक्षित है।"

जैसे ही करुणा जी ने यह सुना कि उनका पासपोर्ट सुरक्षित है। तब उनकी

खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा था। वह खुशी के मारे उछल पड़ी और उनके मुख से निकल पड़ा, "बच गई।" यह बात शिव जी के कानों पर पड़नी ही थी कि उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गई और उन्होंने अपना क्रोध प्रकट करते हुए कहा, "आप बच गये...दूसरों का क्या...जिनकी जान अटकी हुई है यह गलत बात है। आप इस बात को मजाक समझ रहे हैं। इसका मतलब आप समझ रहे हैं हम में से किसी एक का भी पासपोर्ट गुम मतलब उसे जेल की सजा होगी। उनके साथ हम सबको यहीं रुकना पड़ेगा। हम भारत से सब साथ आये हैं और भारत सभी साथ ही जाएँगे। जब तक सबके पासपोर्ट मिल नहीं जाते, तब तक यह बस यहाँ से आगे नहीं बढ़ेगी।"

एक-एक कर सबके पासपोर्ट मिलते जा रहे थे। सबके हाथों में पासपोर्ट देख कर पुष्पा का दिल बैठा जा रहा था। अब अंत में दो यात्री और एक ही पासपोर्ट बचा था। दोनों के दिलों की धड़कने तेज हो रही थी। उनका शरीर पुतला बना हुआ था। उनकी आँखें और कान शिव जी के आवाज की ओर थे। जब शिव जी ने अपने भाल पर हाथ रख दिया तब पुष्पा को लगा कि अवश्य उसका ही पासपोर्ट गुम हो गया है। उसने अंदाजा लगा लिया था। फिर भी वह इस आशा में थी कि वह अंतिम पासपोर्ट उसका ही होगा। उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। शिव जी ने नाम पुकारा पर पुष्पा का नहीं, वह पासपोर्ट दूसरे यात्री का था। पुष्पा ने अपने दोनों हाथ कुर्सी के दोनों हाथों पर जकड़ लिए। उसकी बंद आँखों से आँसुओं की धारायें प्रवाहित हो रही थीं। सबके पासपोर्ट सुरक्षित थे पर उसका ही पासपोर्ट गुम हो गया था। वह सोचने लगी कि उसने कौन-सा गुनाह किया जो उसका ही पासपोर्ट खो गया। अब विदेश में उसका कौन है? जब सबके पासपोर्ट मिल गये और उन्होंने पुष्पा को सिसकते देखा तब सबने उसे धाड़स बंधाया।

"पुष्पा हम सब आपके साथ हैं। हम साथ आये हैं और साथ में ही वापस जाएँगे। चाहे फिर हमें जेल ही क्यों न जाना पड़े।" किसी ने सलाह दी कि पुष्पा अपना सामान फिर से जाँचें।

"पुष्पा जी, अपना सामान ठीक से जाँचना। उसी में भूले से आपने रख दिया हो।"

यदि पासपोर्ट नहीं मिला तो उन्हें, जितने दूर वे कम्बोडिया बोर्डर से भीतर आये हैं, उतने ही दूर उन्हें वापस लौटना होगा। कुछ लोग पुष्पा का साथ देने में लगे हुए थे। तो कई लोग बस से बाहर उतर कर कम्बोडियाई घरों के सामने तस्वीरें खींचने में मशगुल हो गये थे। लगभग आधा घंटा हो चुका था। भीतर सब कुछ तलाश करने के बाद भी जब पासपोर्ट का कोई पता नहीं चला तब पुष्पा का दिल फिर से बैठ गया था। वह सुन्न पड़ गयी थी! उसकी आँखें आँसुओं से भर आयी थीं। जब उसने

अपनी सारी आशाएँ छोड़ दी तब उसने मन बना लिया कि वह जेल जाने के लिए तैयार है जो होगा सो देखा जायेगा। आँसुओं को दायें हाथ से पोंछा और बायाँ हाथ पीछे किया। जैसे उसका हाथ कुछ खोज रहा हो। उसने महसूस किया कि उसके हाथ को किसी वस्तु का स्पर्श हो रहा है। जैसे ही उसने मुड़ कर देखा तो कुर्सी के खाँचे में उसका पासपोर्ट दबा हुआ था। जिसका 25 प्रतिशत भाग बाहर दिखायी दे रहा था। उसने झट से उसे बाहर खिंचा और उसे देखते ही जोर से चिल्लायी।

"पासपोर्ट मिल गया। मेरा पासपोर्ट मिल गया" और वह खुशी से उछल पड़ी। बस के उदासी भरे माहौल में खुशियों ने प्रवेश कर लिया था। एक तरह से उस समय जश्न का माहौल था। सभी यात्री बस में बैठ गये थे सभी ने राहत की साँस लेते हुए खुशी के इस मौके पर पुष्पा को बधाई दी पर पुष्पा के आँखों में अब भी शर्म और आँसू थे। शिव जी ने उनकी भावनाओं को पहचान कर उसे पिछली बस में स्थानांतरित किया। वहाँ अभी पता नहीं था कि किसका पासपोर्ट खो गया था।

पुष्पा उस भय से उभर नहीं पायी थी। जिन्दगी ने उसे बहुत बड़ा सबक सिखाया था। विदेश में पासपोर्ट खोने का मतलब उसने अच्छी तरह से जाना था। उसका भय तब तक बना रहा, जब तक उसने कदम अपने घर में नहीं रखे। अब भी उसे कभी-कभी याद आती है। जब खोया उसे विदेश में...।

मिस्टेक

कॉलेज अहाते में अपने में खोई कोमल अपने पैरों को ऐसे बढ़ा रही थी, मानों उसमें से किसी ने प्राणों को खींच लिया हो। उसका हर कदम कच्छवे की गति से धरती की लम्बाई नाप रहा था। वह उनींदी थी रात भर वह सो न पायी थी। एक विचार-एक सोच ने उसे भीतर तक घायल कर दिया था। वह सोना भी चाहती, पर उसका मस्तिक उसे सोने की आज्ञा नहीं दे रहा था। रात भर जागते रहने से उसकी आँखें सूज गई थीं अपनी आकार से दुगनी...हाँ, दुगनी। जैसे बड़े-बड़े बेर...ये मोटी-मोटी आँखें...। उसका चेहरा लाल सुर्ख हो गया था। जब भी वह उदास होती, तो वह पीली साड़ी पहन लेती। उस दिन भी उसने पीली साड़ी पहन रखी थी, पीली साड़ी पुरानी थी। वह अन्य साड़ियों के भाँति उतनी आकर्षक न थी। शायद इसीलिए वह उस वक्त ऐसी ही दिखना चाहती थी अनाकर्षक...पर उलटे उस पुरानी पीली साड़ी में वह और भी खूबसूरत दिखने लगती थी। खूबसूरत कोमल, आँखों की सूजन से मुरझाये फूल की भाँति लग रही थी।

गेट की सीढ़ियाँ उतरते समय उसके पास एक हाथ में कक्षा में पढ़ाई जाने वाली किताब थी। तो दूसरे हाथ से उसने अपनी साड़ी को थोड़ा ऊपर खींचा। ताकि नीचे उतरते समय पैरों में साड़ी फँस कर गिर न जाये, यह उसकी रोज़ाना की आदत थी। जैसे ही उसने अपना पहला कदम सीड़ियों पर रखा उसने महसूस किया सामने कोई खड़ा है। उसने बोझिल पलकों को तनिक उठाया सामने खड़े माधव को देखते ही उसके हृदय में कुछ हलचल हुई। एक पल के लिए उसने माधव की आँखों में आँखें डालकर देखा, माधव की भी आँखें सूजी हुई थीं। वह भी रात भर सो न पाया था उसकी आँखों में आँसू और गुस्सा भरा हुआ था। कोमल उस पल में निश्छल आँखों से कुछ बोल गई थी—मानो वह कह रही हो, "माधव, मुझे माफ कर दो...मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती। मेरी ही गलती थी जो तुम्हारे साथ आने से इनकार कर दिया। मैंने

तुम पर गुस्सा किया, मैं ही गलत थी तुम सही थे। मैं तुम्हें समझ न पायी थी! माधव, मुझे क्षमा कर दो! मैं अभी इसी पल तुम्हारे साथ चलने के लिए तैयार हूँ।"

माधव ने भी महसूस किया कि कोमल रातभर सो न पायी। लगातार आँखों से आँसू निकलने से उसकी आँखें आँसू रहित उदासीनता की अवस्था को पार कर चुकी थी। वह भी उसे बहुत चाहता था पर कल श्याम की बात उसके हृदय पर ऐसी चोट कर गई थी कि वह उसकी ओर देखना भी नहीं चाहता था पर न जाने क्यों उस पल उसके हृदय में भी कुछ हलचल हुई थी। लगता था कि हृदय ने उसे माफ कर दिया है पर मस्तिष्क उसे ऐसा करने की तनिक भी अनुमति नहीं दे रहा था। उसने दूसरे ही पल अपनी नजरों को उससे हटा लिया और अजनबी की तरह कटूता से अपने क़दमों को आगे बढ़ा दिया। वह उसके करीब से ऐसे गुजरा जैसे मानो वे अजनबी हो पहले कभी मिले ही नहीं थे। माधव के मस्तिष्क में गुस्सा साफ झलक रहा था स्थिर कोमल उसकी ओर देखती रही। यकायक कोमल की भावनाएँ तीव्र हो गई थी। वह खुले आम जोरों से चीख़-चीख़ कर, चिल्लाकर उसे रोकना चाहती थी। उसे अपने किये पर शर्मिंदगी थी वह उससे माफी माँगना चाहती थी पर वह उस वक्त ऐसा करने में असमर्थ थी। किन्तु वह भीतर से चीख रही थी...चिल्ला रही थी।

"माधव, मुझे माफ कर दो। रुको...माधव...रुक जाओ ना...मुझे ऐसे छोड़ कर मत जाओ। मैं तुम्हारे बिना रह न पाऊँगी। सुनो...सुनो तो...।"

माधव मन की बात सुनने के लिए मानो तैयार न था। उसका मस्तिष्क उस पर पूरी तरह से हावी हो गया था। वह तो कोमल की हर बात बिना कुछ कहे समझ लेता था। उसने कभी कोमल को, उसके हृदय को, ठेस नहीं पहुँचाई थी पर उस दिन वह सहन नहीं कर पाया था। कोमल का गुस्से में डाँटकर इनकार करना, वह कभी भी भूल नहीं सकता था। दोनों भी हृदय और मस्तिष्क की जंग में अपने-आप को हार चुके थे। उनका अटूट प्रेम एक नाजुक पुल से गुजर रहा था। गुस्सा, मन-मुटाव का तूफान; उनके निश्छल प्रेम के रिश्ते के पुल को असुरक्षित कर रहा था।

माधव का कोमल के पास से बिना बात किये अजनबी की तरह गुजर जाना। कोमल के पहले से ही विह्वल हृदय को चोट पहुँचाने वाला था। वह चोटिल बन चुकी थी उसने दूसरे हाथ से पकड़ी हुई साड़ी को छोड़ दिया और वही हाथ बरबस उसके हृदय के पास आ गया। उसने हृदय के पास वाले स्थान को कस के भींच लिया और जाते हुए माधव को एकटक देखती रही। उस क्षण उसके लिए दुनिया का अर्थ था, केवल और केवल माधव। गेट से कुछ दूरी पर था...अध्यापक कक्ष...कक्ष के बाहर कक्षा परिवर्तन की घंटी लगाई गयी थी। सिपाही ने लोहे का रॉड उठाया और पूरी ताकत के साथ उस पर वार किया। वार करते ही घंटे की ध्वनि पूरे कॉलेज में पहुँच गयी थी। उसी ध्वनि ने कोमल को माधव की दुनिया से बाहर निकाला था। अचानक

हुई घंटे की ध्वनि ने उसके कान से प्रवेश कर उसका हाथ पकड़ कर्त्तव्य की दुनिया में लाया था। माधव को जाते देख, सूख चुके आँखों से उत्पन्न कुछ बूँदों ने उसकी आँखों को गीला कर दिया था। उसने तुरंत अपनी साड़ी का पल्लू उठाया और आँखें पोंछ लिए। वह जब बाहर की दुनिया में आयी तो उसने इधर-उधर देखा...उसे इस अवस्था में किसी ने देखा तो नहीं। वहाँ संयोग से उस वक्त कोई नहीं था। जो उसे और माधव को इस अवस्था में देखें पर थोड़ी-सी भी आवाज दीवारों को तृप्त करने वाली थी। उन दोनों ने बात भी की पर मौन...नयन और मन की भाषा से...।

माधव जब कोमल के पास से गुजरा तो उसे लगा कोमल इसे रोक लेगी उससे माफी माँगेगी...पर उसकी नजरों में ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था। दूसरे ही पल में कोमल का मौन और उसकी सूजी हुई आँखों ने उसे पिगला दिया था। वह भी उससे बात करना चाहता था पर उससे पहल की अपेक्षा कर रहा था वह पछता रहा था! काश, वही पहल करता। उसने महसूस किया कि उसे अपने किये पर पश्चाताप हो रहा है। यही कारण था कि वह रातभर सोयी नहीं थी उनींदी थी। जैसे ही गेट को लाँघ; सीडियाँ उतर कर आध्यापक कक्ष की और उसने कदम बढ़ाये, माधव ने पलट कर उससे बात करनी चाही पर...अब देर हो चुकी थी। वह कुछ पल उसके लिए रुकी थी पर अब माधव उस दिशा की ओर देखे जा रहा था...जहाँ पर कोमल ...विरह विदग्ध होकर खड़ी थी। उसने अपना बायाँ हाथ उठाया और अपने चेहरे पर से हल्के से घुमाया। साँसें भरी और साँसें छोड़ता हुआ वहाँ से अपनी कक्षा की ओर चला गया। कक्षा में उसका मन कहाँ लगने वाला था उसकी नजरों के सामने कोमल का वह चित्र बार-बार आ रहा था।

माधव और कोमल की पहली मुलाकात कॉलेज में हुई थी। कोमल का जब अंशदायी अध्यापक के रूप में कॉलेज में चयन हुआ था। तब वह अन्य दो अध्यापिका सहेलियों के साथ किरायें के एक रूम में रहा करती थी। ऐसे में माधव का मित्र जो औरंगाबाद शहर के एक जानेमाने कॉलेज में राजनीति शास्त्र पढ़ाता था, वह माधव से मिलने नांदेड शहर चला आया था। उसके नांदेड आने का कारण कोमल थी। उसे किसी ने बताया था कि उसके जाति की एक कुँवारी लड़की नांदेड के एक जानेमाने कॉलेज में रहती है जहाँ माधव भी पढ़ाता था। उसके पास एक बहाना था। उसे जिसने बताया था उसने उसके हाथ में एक पत्र थमा दिया था और कहा था, "मित्र, तुम नांदेड जा रहे हो, तो यह पत्र लेते जाना और कोमल को देना।"

मित्र ने माधव को जानकारी दी थी। माधव ने कॉलेज में आयी नई अध्यापिका को मित्र के कारण बात किया था। उस वक्त कोमल और मित्र का हल्का-सा परिचय हुआ था। कोमल ने कक्षा की व्यस्तता के कारण, माधव और मित्र को दूसरे दिन रविवार को रूम पर श्याम पाँच बजे बुलाया था। एक छोटे से कागज पर उसने पता

लिख दिया और माधव के हाथ में मुस्कुराते हुए थमा दिया। उस वक्त माधव के मन में सिवाय एक अध्यापिका के परिचय के कुछ नहीं था। जो अपने मित्र की मद्दत कर रहा था। कोमल से उस वक्त कुछ ख़ास बात नहीं हो पायी थी। कोमल भले ही दिखने में उस वक्त खूबसूरत दिखायी दे रही थी। वाणी में मधुरता थी पर प्रेम जैसा कुछ नहीं था। न ही उसके हृदय में प्रेम की घंटी बजी थी, न ही उसके प्रति ऐसा कोई आकर्षण ही था। हाँ, पर माधव का मित्र उसे देख-देख बेहद प्रसन्न हो रहा था, मानो उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गयी हों। वह उसे पहले ही नजर में भा गई थी। या यूँ कहे कि उसके हृदय में जरूर घंटियाँ बजने लगी थी। वह सातवें आसमान पर था। माधव को उसे प्रसन्न होता हुआ देख और भी ख़ुशी हो रही थी। जाते-जाते कोमल ने दोनों की तरफ देख कर, दायाँ हाथ उठा कर 'बाय' किया था।

माधव ने कॉलेज छूटने के बाद अपने मित्र को नांदेड के दर्शन करवायें। दस गुरुद्वारें, विष्णुपुरी जलाशय के किनारे प्रकृति की गोद में बसा कालेश्वर मंदिर, पहाड़ों की खूबसूरती में बसा रत्नेश्वरी मंदिर और श्याम को गोविन्द बाग़ का 7.00 बजे का शो। जो दसवें गुरु गोविन्दसिंह पर आधारित फाऊंटन शो को देख कर आश्चर्य चकित हुआ। यहाँ उसने गरु गोविन्दसिंह जी के इतिहास को पानी के फव्वारों पर भव्य दिव्य रूप में देखा था। जहाँ रोज-भारत के कोने-कोने से गुरुद्वारा दर्शन के लिए आये यात्री शो देखने के लिए जरूर आते थे। मित्र यह सब देख कर धन्य हो गया था उसने नांदेड के इस सौन्दर्य को निकट से जाना परखा था। उसमें उसके और कोमल की यादों के ख़ुशी के पल मिश्रित थे। मित्र रातभर उसे मिलने की ख़ुशी में न सो पाया था। न वह खुद सोया और न ही माधव को सोने दिया था। माधव को यह समझने में देर न लगी थी कि मित्र पहली नजर में उसके प्रेम में पड़ गया था। सुबह हुई...कोमल को मिलने की ख़ुशी उसके चेहरे पर साफ-साफ देखी जा सकती थी। पाँच बजे तक का समय उसे वर्षों के समान लगने लगा था। वह हलके-फुल्के विरह से गुजर रहा था बिहारी की नायिका की भाँति बैरिन समय उसे काट रहा था। जैसे-जैसे घड़ी की सुईयाँ श्याम पाँच बजे की और दौड़ रही थी, उसका हृदय भी सुईयों की भांति धड़कने लगा था।

माधव और मित्र, कोमल द्वारा दिए गये पते पर बिना किसी कठिनाई से पहुँच गये थे। वहाँ कोमल भी अपनी सहेलियों के साथ दोनों की प्रतीक्षा में ही बैठी थी। दोनों के पहुँचते ही उसने कहा था, "आईये..आइये, हम आप की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। यहाँ पहुँचने में कोई कठिनाई तो नहीं हुई, मेरा मतलब है कि पता, पता करवाने में कोई असुविधा तो नहीं हुई।"

"नहीं-नहीं, बड़ा ही सरल पता था। हमें किसी को पूछने की जरूरत ही नहीं पड़ी और आपकी रूम सड़क पर ही तो है, कोई भी आसानी से पहुँच सकता है।"

नीचे बैठते हुए माधव ने कहा था।

उस दिन कोमल ने नीली साड़ी पहनी थी। नीली चूड़ियाँ, उसकी खूबसूरती में चार चाँद लगा रहे थे। कोमल ने पानी का गिलास हाथ में दिया और वह भी पास में ही बैठ गई थी। उसने अपनी सहेलियों के साथ माधव और मित्र का परिचय करवाकर दिया था। उधर मित्र कोमल की ओर एक टक देख रहा था। भीतर पानी लाने के लिए जाने तक और भीतर से बाहर और सामने पास ही बैठ कर परिचय करवाने तक, वह लगातार उसे अपनी नजरों में समाये जा रहा था। वह प्रत्येक पल को नजरों में समाना चाहता था। कोमल के साथ विमल तथा कमल एक साथ रहा करती थी। वे रूम पार्टनर थी कोमल के साथ उनका स्वभाव भी पता चल रहा था। सभी खुल कर बात कर रहे थे। मानों दोनों उनके गाँव से आये हो। ख़ास कर कोमल का बात करना, जिसमें अपनापन था भोलापन था। वह ऐसे बातें करती कि जैसे सामने वाले के साथ बहुत पुरानी जान पहचान है। कोई भी आसानी से उसके स्वभाव और सौन्दर्य से अभिभूत हो उसके प्रेम में पड़ जायें। इस पर मित्र का तो क्या कहना था? वह इस कदर उसका दीवाना हुआ कि वह उसके लिए उस समय भगवान से भी ज्यादा थी। उसके मन में उससे विवाह के विचार कौंदने लगे थे। वह एक पल भी उसके बिना नहीं रहना चाहता था।

उस दिन से मुलाकातें होती रहीं। जब भी मित्र आता माधव को जरूर साथ ले जाता। दोनों उससे मिलने के लिए उसके रूम पर जाते और खट्टी-मीठी बातों में खो जाते। समय कैसे गुजर जाता पता ही नहीं चलता था। वहाँ से होकर वापस लौटना दोनों के लिए दूभर हो जाता था। वास्तव में कोमल, विमल और कमल ये भी नहीं चाहते थे कि वे दोनों अब वापस लौट कर जायें। उन्हें भी उनका साथ अच्छा लगने लगा था मुलाकातें होती रहीं...। मित्र की इच्छा का कोमल को पता चल गया था। कोमल को यह बात कतई पसंद नहीं आयी थी। वह किसी भी सूरत में उससे विवाह करना नहीं चाहती थी क्योंकि नियति ने उसके साथ बड़ा मजाक किया था। वह अपाहिज था, एक आँख से अँधा, नाक पिचकी हुई बौना। वह चाहकर भी उससे विवाह नहीं कर सकती थी। उसका कोमल के साथ कोई मेल नहीं था न ही वह भविष्य में स्त्री सुलभ खुशी दे सकता था। कोमल ने माधव से मित्र को समझाने के लिए भी कहा था पर मित्र को समझाना इतना आसान नहीं था। वह तो उसके प्रेम में ऐसे डूबा हुआ था जैसे भँवरा पराग को चूसने में लीन रहता है। उसे बाहर की दुनिया, दिन-रात का पता नहीं चलता और कमल में फँस जाता है। वैसे ही वह भी कोमल के प्रेम में फँस गया था। अब कोमल से भी अच्छी मैत्री बन गई थी दोनों की बात सुनना था। किसी एक पक्ष पर निर्णय माधव को ही लेना था। सो उसने कोमल का पक्ष लेना उचित समझा था। इसलिए उसे झूठे प्रेम का नाटक करना था

कोमल और माधव ने झूठे प्रेम का नाटक किया था। इसका परिणाम मित्र माधव को दुश्मन समझने लगा था पर किसी भी हालत में मित्र को प्रेम के नशे से बाहर निकालना था। इसलिए माधव हृदय पर पत्थर रखते हुए, दुश्मन बनने के लिए भी तैयार हो गया था। नतीजन मित्र रूठ कर औरंगाबाद चला गया, फिर लौटकर कभी नांदेड नहीं आया। उसे खोने का गम माधव को भी था और कोमल को भी। कोमल उसके साथ एक अच्छे मित्र के रूप में उसके साथ रहना चाहती थी पर वह संभव न था। माधव ने उसे आगे चल कर साफ-साफ बता दिया था, उसने और कोमल ने नाटक किया था। उसे अपनी गलती का अहसास हुआ उसने दोनों की खत द्वारा माफी माँगी और वह पुनः पहले जैसा मित्र बन गया था। मित्र के अपाहिज होने के कारण माधव के साथ कोमल को भी अफसोस था। कहा जाता है न; आखिर वहीं होता है, जो नियति को मंजूर होता है।

मित्र के जाने के बाद से लेकर उसे मनाने तक कोमल और माधव मिलते रहे थे। जब भी कॉलेज छूटता वे दोनों साथ में निकल पड़ते थे। कभी इस बहाने से तो कभी उस बहाने से...। चलते-चलते दोनों के कई विषयों पर बातें हुआ करती थी। आगे चल कर वे और उसकी सहेलियाँ हॉस्टल पर रहने के लिए चले गये थे। जो माधव के घर के रास्ते पर पड़ता था। दोनों का एक ही समय होता कॉलेज से बाहर निकलने का...। कॉलेज से हॉस्टल लगभग पन्द्रह मिनट की दूरी पर था पर दोनों इस तरह चलते कि वहाँ पहुँचते-पहुँचते आधा घंटा तो हो ही जाता था। फिर भी उनकी बातें खत्म नहीं होती थी। हर रोज नये-नये विषय होते, कभी घर की बातें, कभी कॉलेज की, कभी फ़िल्म की, कभी गीत-संगीत...बचपन आदि...आदि। हँसते-मुस्कुराते दिन बीतने लगे थे। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे; वैसे-वैसे वे एक-दूसरे को निकट से जानने-पहचानने लगे थे। करीब और करीब आने लगे थे पर उनकी मैत्री में सात्विकता थी। जब भी हॉस्टल आता, तो वहाँ कम-से-कम दस मिनट तो बातें होती ही थी। एक दिन माधव ने घर चलने का आग्रह किया तो, वह तैयार हो गई थी। मानो वह इसी की ही प्रतीक्षा कर रही हो। उसने कहा भी था कि उसे घर कब ले जा रहे हो? उस दिन मौका मिला था। वे वहाँ से बीस मिनट की दूरी पर स्थित माधव के घर पैदल ही निकल पड़े थे। ऑटो जान बूझकर नहीं किया गया था क्योंकि रास्ते में कई विषयों पर बातें हो सकती थी। दोनों को साथ रहना बेहद पसंद था, दोनों की दोस्ती गहरी हो गई थी। कॉलेज से लेकर सड़क तक सबको उनकी दोस्ती का पता चल गया था। उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि कोई क्या कहेगा। उन दिनों एक अध्यापक जिसने अपनी गली की ही एक लड़की के साथ प्रेम विवाह कर लिया था और दोनों घर छोड़ कर भाग गये थे। सभी यह विषय दोनों को ख़ास कर के सुना रहे थे। कहते थे, "माधव जी, क्या आप को पता है? उस

अध्यापक को प्राचार्य ने कॉलेज से निकाल दिया क्योंकि उसने अपनी ही गली की लड़की के साथ माँ-बाप की बिना अनुमति के प्रेम विवाह किया और घर छोड़ कर भाग गये। लड़की के माता-पिता ने प्राचार्य से शिकायत कर दी और उन्होंने तुरंत उस अध्यापक को कॉलेज से निकाल दिया और हमने यहाँ तक सुना है कि उन्होंने पुलिस थाने में रपट लिखा दी है।" दोनों ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया था क्योंकि उन्हें पता था, उन्हें ऐसा कुछ था ही नहीं।

उस दिन चर्चा किये जाने वाले विषय में 'प्रेम' भी था। कोमल ने उस घटना को लेकर पूछा था।

"माधव जी, क्या प्रेम करना गुनाह है?"

"नहीं तो...प्रेम गुनाह कैसे हो सकता है! प्रेम तो प्रकृति का अनमोल उपहार है। वह सुख-दुःख के सागर में डूबकर परमानंद प्राप्त करता है।"

"परमानंद..."

"हाँ, परमानंद...प्रेम मानव द्वारा बनाये धर्म, जाति, सम्प्रदाय से ऊपर होता है। वह नदी की भाँति स्वच्छ, फूलों के भाँति मासूम होता है। प्रेम दो आत्माओं का मिलन हैं। प्रेम रूपी भक्ति से परमात्मा रूपी आनंद की प्राप्ति होती है। उन दोनों ने उस आनंद की प्राप्ति कर ली।"

"माधव, तुम प्रेम पर कितना कुछ जानते हो। तुम्हें सुनना, आनंद प्राप्त करना है इसीलिए मुझे तुम्हारा साथ अच्छा लगता है।...माधव जी, प्रेम से ईश्वर प्राप्ति हो सकती है, तो क्या ईश्वर को पाने के लिए सबको प्रेम करना चाहिये?"

"कोमल जी, आपके प्रश्न मेरे उत्तर के जन्मदाता है।...प्रेम का विशाल एवं व्यापक अर्थ है, मैंने मात्र उसका एक अंग बताया। दो आत्माओं में होनेवाला प्रेम स्वच्छ हो...अन्यथा वह शुद्ध वासना होगी। हमें प्रत्येक कार्य प्रकृति के नियमों में बंध कर करना चाहिये। प्रेम प्रकृति के प्रत्येक कण-कण से, अंग से होना चाहिये। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-नाले, झरने-समन्दर, आकाश-धरती, मनुष्य। जो आँखों से दिखता है और जो नहीं दिखता है...उन सबसे प्रेम करना चाहिये।"

"वाह! माधव जी, आपने प्रेम का एक नया अर्थ बताया। हम ऐसे प्रकृति से प्रेम करने लगेंगे तो...तन और मन की सौन्दर्यता अपने आप प्राप्त हो जाएगी।"

"कोमल जी, यही सौन्दर्य ही आनंद की प्राप्ति करवाएगी।"

दोनों आपस में प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य, आनंद, नियम आदि विषयों पर बातें करते-करते; कब घर पहुँच गये पता नहीं चला था। उस दिन उन्होंने बीस मिनट की दूरी चालीस मिनट में तय की थी। माधव उस दिन बेहद खुश था कि कोमल को अपने साथ घर ले जा रहा है और कोमल के भी खुशी का ठिकाना नहीं था कि वह अपने प्रिय मित्र के साथ घर जा रही है।

उस दिन घर पर कोई नहीं था। माधव ने बाँस से बने गेट को खोला जो रस्सी से बंधी थी। आँगन में कोमल ने अपना पहला कदम रखते ही उसने कहा था, "वाह ...कितने सुंदर फूल हैं।"

आँगन में भांति-भांति के फूलों के पौधे सजे हुए थे। उसे माधव और उसके परिवार ने बड़े करीने से सजा रखा था। वे पुष्प आँगन की शोभा बढ़ा रहे थे। माधव मध्यवर्गीय परिवार से था। हाल ही में उन्होंने एक जमीन खरीद कर उस पर कच्चा मकान बनाया था। माधव के पिता ने जमीन खरीदने और घर बनाने के लिए बैंक से लोन लिया था। सो उसी पर वह कच्ची ईंटों से सजा, लोहे के टिनों से ढका था। कोमल को माधव का घर देख वैसी ही खुशी हुई, जैसे उसे अपना घर देख कर होती थी। कोमल का माधव के घर में प्रवेश हुआ। उसके कदम भीतर रखते ही लोड सेडिंग में बिजली आ चुकी थी। यह संकेत थे। उसके साथ खुशियों के अनेक...। कोमल सच में खुश थी। खुशी का दूसरा नाम कोमल...। माधव ने नीचे चटाई बिछाते हुए उसे बैठने के लिए कहा और वह सहर्ष बैठ गई। माधव ने कहा, "कोमल जी, आप तनिक बैठना, मैं आपके लिए फर्स्ट क्लास चाय बनाकर लाता हूँ।" पर कोमल ने माधव को ऐसा करने से रोका और वह खुद चाय बनाने लगी। उस दिन माधव जो अक्सर दूध पीता था...कोमल के हाथों बनी चाय पी ली। ऐसे में भूख भी लग रही थी पर घर में कोई नहीं था। कोमल ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। उसने उस दिन गरमा-गरम चपाती, दाल और भिन्डी की सब्जी बनायी थी। माधव ने जब उस भोजन को चखा तो...आश्चर्य चकित हुआ। उसकी माँ भी बिलकुल ऐसा ही भोजन बनाती थी। "कोमल जी, आप तो बिलकुल मेरी माँ जैसा भोजन बनाती हो। मैं बड़ा खुश नसीब हूँ कि आप के हाथों से बना भोजन खा रहा हूँ। पाक कला में आपका जवाब नहीं।"

कोमल सीधी-सादी लड़की थी। उसमें अपनापन था, भोलापन था वह गर्व से रहित थी। माधव ऐसी दोस्त पाकर धन्य था। कुछ समय बाद माधव की माँ आ गई थी। कोमल ने उन्हें देखते ही अपना पल्लू सिर लिया और उनके चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया। कोमल की विनम्रता और संस्कार प्रियता ने माधव की माँ का मन जीत लिया था। माधव की माँ ने मन-ही-मन माधव और कोमल का विवाह होता हुआ देख लिया था। उस दिन कोमल की माँ के साथ बहुत समय तक बात होती रही। श्याम होने को थी कोमल ने अपनी जानकारी हॉस्टल के रूममेट विमल को दे दी थी। विमल कोमल को फटकार रही थी कि उसे भी साथ ले जाती। जब श्याम अधिक हो गई तो माँ ने माधव को कोमल को हॉस्टल छोड़ आने की बात कही थी। कोमल को माधव का घर अपने घर जैसा लग रहा था। वह हॉस्टल नहीं जाना चाहती थी पर उसे जाना ही था, सो माधव उसे हॉस्टल छोड़ आया था। वहाँ विमल पहले

से ही प्रतीक्षा में बैठी थी। उसने माधव के सम्मुख नाराजगी जतायी थी कि उसे अपने घर क्यों नहीं ले गये। माधव ने भी वादा किया था कि अगली बार उसे भी जरूर घर ले जाएगा। दोनों ने मुस्कुराते हुए दायाँ हाथ उठाकर 'बाय-बाय' किया था। विमल माधव को जाता हुआ देख रही थी। उसकी नजर तब तक उस पर बनी हुई थी, जब तक की वह नजरों से ओझल न हो जाए। उस श्याम दोनों भी खुश थे माधव और कोमल। नींद भी बड़ी सुकून की आयी थी सपने भी सुंदर थे सपने में कोमल माधव के घर थी। किचन से माधव को आवाज लगा रही थी।

"अजी सुनते हो...और एक रोटी लाऊँ क्या? गरमा-गरम है।"

सुबह भी खुशियों से भरी थी। पक्षियों का मधुर गान, वृक्षों से निकलने वाली शीतल हवा...सूर्य की कोमल किरणों ने उन्हें जगाया था।

दिन बीतते गये। विमल, कोमल और माधव एक साथ कॉलेज से निकलने लगे थे। एक दिन कोमल अपने घर गई थी। सो विमल और माधव कॉलेज से एक साथ निकल पड़े थे। उस दिन विमल ने जिद की कि "माधव जी, आज आप को मुझे अपने घर ले जाना ही होगा, कोई बहाना नहीं चलेगा। विमल के स्वभाव में भी अपनापन था। वह भी कोमल की भाँति दोस्त बन गई थी। विमल निःस्वार्थ रूप में सामाजिक कार्य किया करती थी। जितना वह औरों को मदद करने में अपने आप को धन्य मानती थी, उतना ही वह अपने मित्रों, सहेलियों के लिए समर्पित भी थी। विमल भी कोमल की भाँति ही सुंदर थी पर विमल के सौन्दर्य में साँवलापन था। नयन-नक्ष आकर्षक थे। उसके वस्त्रों के चयन, शब्दों के चयन में स्तरीयता थी पर अपने सखी-सहेलियों में, दोस्तों में खुलकर अपने मन को रखती थी। मानो वह खुली किताब हो। बातों का उसके पास भंडार था वह शब्दों की अमीरी लिए थी। वह शब्द ही नहीं अपितु भावनाओं की भी अमीर थी।

विमल को माधव से प्रेम हो चुका था। वह हर पल उसके साथ रहना चाहती थी। उससे बातें करना, उसकी बातें गौर से सुनना। वह पहले कभी इतनी खुश न रही थी। उसके मन का राजकुमार उसे मिल गया था। उसने मन-ही-मन उससे विवाह की भँवरियाँ ले चुकी थी। जब भी कोमल, माधव के संग हो लेती तो वह भी अपनी कक्षा छोड़ उसके साथ हो लेती। कोमल का माधव के साथ हँस-हँस के बातें करना उसे कतई अच्छा नहीं लग रहा था। उसे जलन होने लगी थी वह कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ ही लेती जिससे दोनों में दरार आए। उसे एक अवसर ऐसा भी मिला पर वह उसी में ही फंस गई राखी का त्यौहार था। विमल ने माधव को फोन पर कहा, "आज राखी का त्यौहार है। आ जाओ राखी का त्यौहार देखने के लिए।"

माधव साफ मन से गया। वह अपनी सहेलियों के साथ राखी का त्यौहार मना रही थी। कुछ समय बीत गया था पर कोमल अब तक रूम से बाहर नहीं आयी थी।

कई बार विमल उसे बुलाने के लिए गई थी पर वह आयी नहीं। बाकी की सहेलियों ने जोर दिया कि, "माधव जी को आपने राखी के लिए बुलाया है। आप राखी बाँध दीजिये।"

वह बेमन से मजबूर हो गई थी। उसने प्लान बनाया था कि कोमल द्वारा माधव को राखी बाँध भाई बनवाया जाय पर हुआ इससे उल्टा और विमल को ही माधव की बहन बनना पड़ा। उस रात वह बहुत रोयी उसके लिए सबकुछ खोया-सा हो गया था। उसे अपने कार्य पर पश्चाताप हो रहा था पर अब बहुत देर हो चुकी थी। कोमल ने साफ-साफ राखी बाँधने से इनकार भी कर दिया था। कोमल की हरकतों ने बयान कर दिया था कि कोमल भी माधव से प्रेम करने लगी है।

विमल बहन तो बन गई थी पर उसने ठान लिया था। माधव उसका न हुआ तो क्या हुआ उसे कोमल का भी नहीं होने देगी। प्रेम के टूटन ने विमल के हृदय और मस्तिष्क पर गहरा आघात कर दिया था। आचानक उसका स्वभाव बदल गया था। सभी उसके इस परिवर्तन से आश्चर्य चकित थे। वह न जाने रात-रात भर क्या सोचा करती थी, लगता था कि उसके दिमाग में बस यही चलता रहता कि कोमल को माधव से कैसे जुदा किया जाये। वह हर बार नये-नये पैंतरे आजमाती थी। वह विमल के मन में माधव की बुराइयाँ करने लगी थी। उसने धीरे-धीरे उसके मन में जहर भरना आरम्भ कर दिया था और उधर माधव के मन में कोमल के बारे में। दोस्ती में कुछ दरार-सी साफ झलकने लगी थी। कुछ मन-मुटाव के बाद फिर से उनमें गहरी दोस्ती हो गई थी। अब माधव के हृदय में भी कोमल को लेकर हलचल मचने लगी थी। वह अब उससे प्रेम करने लगा था पर उसने कभी उसे उजागर नहीं किया। वह सोचता कि कोमल न जाने उसके बारे में क्या सोचेगी और वह समय की प्रतीक्षा में जुड़ गया। कोमल का माधव के घर और माधव का कोमल से मिलने होस्टल आना बद्दतसुर जारी था। कभी गार्डन में, कभी चाय कैंटीन में, तो कभी सिनेमा हाल में। उनका अव्यक्त प्रेम सबको दिखाई देने लगा था। एक दिन कोमल ने उसे अपने घर चलने की जिद की थी पर माधव ने कोई कारण बताकर आने से इनकार कर दिया था। इनकार सुनकर वह बहुत नाराज हो गई थी। उसकी सुरत रोनी-सी हो गयी थी। ऐसा लगता था कि वह अब रो पड़े...उस दिन वह बहुत बेचैन थी। उस दिन के बाद उसने कई दिनों तक माधव से बात करना टाल दिया था।

कई दिनों तक बात न हो पाने के कारण माधव भी विरह में था। वह ठीक से सो न पा रहा था और न ही उसका किसी में मन लग रहा था। जब भी वह कोमल से बात करना चाहता था। तब कोमल उसे एक तो टालती या गुस्से में उसका अपमान करती। माधव समझ नहीं पा रहा था कि उसमें एकाएक ऐसा परिवर्तन क्यों आया। उसने बहुत जानने की कोशिश की पर उसने बताने से और बात करने से

इनकार कर दिया। उन्हीं दिनों उसने एक भयानक सपना देखा था! कोमल और माधव हाथ पकड़े हुए थे। कोमल मुस्कुरा रही थी पर अचानक उसने उसका हाथ छोड़ दिया। कोई उसे खींचता हुआ ले जा रहा है और वह जोर से चिल्ला रही है। "माधव...माधव...।" और वह गायब हो गई। जब सपना टूटा, तब वह रात भर सो न पाया था। वह सोच रहा था कुछ तो अनिष्ट हुआ है। उसे लग रहा था कि अभी इसी वक्त जाकर उसे मिले और देखें वह सुरक्षित तो है। उस पर कोई संकट तो नहीं आया पर रात के तीन बज रहे थे। इस वक्त यदि वह बाहर गया तो घर के सब लोग परेशान हो जाएँगे। उसी समय उसने तय कर लिया था कि वह उससे ही शादी करेगा। वह उसके बिना नहीं रह सकता, भले ही वह दूसरे जाति की थी। उनके प्रेम जाति देख कर नहीं हुआ था। वह तो हो गया था सुबह ही उसने यह बात अपनी माँ से और फिर पिता को बता दी।

"मैं कोमल से बेहद प्रेम करता हूँ। मैं उसके बिना नहीं रह सकता मैं उसी से ही विवाह करना चाहता हूँ, वह भी मुझसे प्रेम करती है।" घर के लोगों ने कोमल और उसके स्वभाव को देखा था। वे तो पहले से ही सोच रहे थे कि कोमल उनके घर की बहू बने। उस दिन वह बहुत खुश था उसके सामने आसमान भी बौना पड़ रहा था। वह जल्द जाकर उससे अपने प्रेम और विवाह का इज़हार करना चाहता था। उस दिन वह उससे मिलने और बात करने के लिए बेताब था पर विमल उसे अब भी टाल रही थी। श्याम हो गई,...तो माधव से रहा नहीं गया। वह हॉस्टल पहुँचा और उसे अपने घर चलने के लिए कहा, "कोमल तुम्हें माँ याद कर रही थी, तुम्हें आज घर पर बुलाया है।" उसने रूखे स्वर में आने से इनकार कर दिया और कहा कि, "मैं नहीं आ सकती माधव जी...मुझे मिलने के लिए घर से कोई आया है। आप यहाँ से जा सकते हैं।" जब माधव उसे लिए बिना जाने को तैयार नहीं था, तब उसने सीधे कह दिया—"माधव जी, मैं आपकी बहुत इज्जत करती हूँ। प्लीज आप यहाँ से जाइये। मैं अभी आपसे बात करने के मूड़ में नहीं हूँ, आप सीधे तरीके से जा रहे हैं, या वार्डन को बुलाऊँ...।" यह सुनना ही था कि माधव का सारा उत्साह, सारी खुशी धरी-की-धरी रह गई थी। उसे भी गुस्सा आ गया था उसने जाते-जाते कहा, "आज यदि तुम नहीं आयी तो मैं तुमसे कभी भी बात नहीं करूँगा। समझ लेना हमारी दोस्ती टूट गई।"

वह खमोश थी। माधव ने आखिरी बार उसकी और गुस्से में देखा और वह चलता बना। रात भर वह सो नहीं पाया कि उसने ऐसा क्यों किया। उसकी आँखों में आँसू और गुस्सा था अब वह उससे कभी बात नहीं करेगा। उसके सपने टूट चुके थे। जब वह सुबह कॉलेज गया, तब गेट पर उनकी मूक मुलाकात हुई। वह भी रात भर रोई थी। उसकी आँखें सूजी हुई थीं उसे बिना बात किये माधव, कोमल को लाँघ

गया था।

कुछ दिनों के बाद एक दिन श्याम को उसे भुलाने के लिए वह अपने मित्र के साथ शहर के बगीचे में गया था। बगीचे के गेट पर विमल से मुलाक़ात हुई। जो किसी का इंतजार कर रही थी। उसने उन्हें रोकने का प्रयास किया और बाहर किसी होटल पर चलने के लिए कहा पर अब माधव, कोमल से जुड़ी हुई यादों से दूर जाना चाहता था। वह विमल से भी दूर जाना चाहता था। जब वह बगीचे में अपने दोस्त के साथ गया, तब उसने देखा कि कोमल किसी के हाथ में हाथ डाले घूम रही है। उसे अब समझ आया था कि विमल ने ऐसा क्यों कहा था। उस समय उसके पैरों तले की जमीन खिसक गई थी। उसने अपने हृदय पर पत्थर रखा और अजनबी की भाँति वहाँ से आगे चलता बना। कुछ दिनों बाद पता चला कि वह कोमल का मंगेतर था। उसे याद आया कि उस दिन कोमल ने उसे अपने घर चलने के लिए क्यों कहा था क्योंकि वह माधव को अपने माता-पिता से मिलवाना चाहती थी। वह किसी और से विवाह नहीं करना चाहती थी। उसने अपने माता-पिता से भी बात कर ली थी पर माधव ने आने से इनकार कर दिया था और जब माधव नहीं आया तो उसके माता-पिता ने उसका विवाह किसी ओर से तय कर दिया। जब माधव कोमल को अपने घर बुलाने के लिए हॉस्टल गया था, तब कोमल ने इसी कारण से इनकार कर दिया था। वह चली भी जाती और सच्चाई बता भी देती पर उसके दायें पैर पर एक बड़ी फुंसी आ गई थी। जिस कारण उसका पैर सूज गया था और वह ठीक से चल नहीं पा रही थी। फुंसी के कारण उसे वेदना हो रही थी, वह थोड़ा भी हलचल करती तो उसे दर्द हो रहा था। उस दिन कोमल के साथ विमल ने भी आँसू बहाये थे। विमल को पश्चाताप हो रहा था कि उसी के कारण यह सब कुछ हुआ है। विमल, कोमल, माधव बाहर से मुस्कुराते हुए नजर आ तो रहे थे पर वे भीतर-ही-भीतर आँसू बहा रहे थे। तीनों के मुख से अनायास ही एक ही शब्द निकला था...'मिस्टेक'।

काँटा

"निलेश मुझे अपने साथ ले जाओ। मैं पापी हूँ! ना समझ हूँ। आज तुम्हें खोने का दर्द मैं महसूस कर रही हूँ। कहीं से आ जाओ...उड़कर आ जाओ और मुझे अपने साथ ले जाओ।"

नीलू दायें पैर पर बायाँ हाथ रख फर्सी पर बायें पैर का अँगूठा रगड़ते हुए बड़बड़ा रही थी। ऐसे में भीतर से बंद दरवाजे के उस पार कुण्डी को पटकाते हुए नीलू की माँ ने दस्तक दी। "नीलू...नीलू बेटा...दरवाजा खोल दे बेटा! कब तक ऐसे अपने-आप को अँधेरे कमरे में बंद करके रखेगी? दरवाजा खोल बेटा!"

नीलू पागल-सी अपने अतीत में खोयी हुई थी। उसने दरवाजे की दस्तक और माँ की आवाज सुनी नहीं। किन्तु दस्तक की ध्वनि एवं माँ की आवाज ने उसके कानों को धीरे से स्पर्श किया था। उसने अचानक महसूस किया कि माँ उसे आवाज लगा रही है। वह अपने तन्द्रा से बाहर तो आ गई थी किन्तु न वह उस कमरे से बाहर निकालना चाहती है और न ही उसका कहीं बाहर जाने का मन करता है। बाहर की दुनिया से उसका मन उक्ता चुका था। अब वह मात्र चलता-फिरता शरीर बनकर रह चुका था। उसका जीवन निराशा, दुःख, पीड़ा, निरसता से भरा हुआ था। अब वह अक्सर या तो शून्य में खोयी रहती या निलेश के साथ बिताये हुए पल याद करती।

उस दिन सत्तर साल की उस बूढ़ी माँ ने पैंतालिस साल की नीलू को उस अँधेरे बंद कमरे से बाहर निकालने का कई बार प्रयास किया पर हर बार उसके पल्ले निराशा ही हाथ लगती थी। नीलू की एक बहन और एक भाई था। नीलू दूसरे नंबर की बहन थी। फिर भी माँ की लाड़ली बेटी वही थी। उसने ही माँ से अधिक लाड और प्रेम पाया था। जब पिताजी नहीं मानते माँ के जरिये उसकी सारी इच्छायें पूरी होती थी पर अब वह थक चुकी थी। बुढ़ापे के कारण नीलू की पहले जैसी इच्छा वह

पूरी नहीं कर पा रही थी। नीलू की उदासी और निराशा को देखकर वह भी उदास रहने लगी थी। वह उसे अक्सर समझाती थी कि, "बेटा नीलू, मेरे बाद तेरा क्या होगा? तेरा कौन ख्याल रखेगा? तू कमरे से बाहर निकलती नहीं। कहीं किसी से बात नहीं करती। तेरा कहीं बाहर जाने का जी नहीं करता। अब यहाँ तुझे कोई पहचानता नहीं बाहर निकल बेटा। क्या तू मेरे मरने के बाद बाहर निकलेगी?" और माँ ने अपने साड़ी के पल्लू को अपने मुँह में दबा लिया। माँ की सिसकी सुन उसका बेजान-सा शरीर उठा और दरवाजे की कुण्डी खोल बाहर आया। माँ की सिसकियों ने एकाएक उसे वर्तमान में आने के लिए विवश कर दिया था। माँ को सांतवना देने के बजाये वह डाँटने लगी, "क्यूँ तू मेरे पीछे पड़ी है, माँ? मुझे रहने दे अकेला। मैं बाहर नहीं आना चाहती। क्यों तू मुझे ऐसे परेशान करती रहती है?"

बूढ़ी माँ ने पल्लू से अपने आँसुओं को पोछा और खिल पड़ी। मानो नीलू को देखकर उसमें नई जान आ गई हो। उसने नीलू की उस बात का बुरा नहीं माना था। वह आज भी उसकी लाड़ली बेटी थी। वह बचपन में और विवाह के पूर्व तथा विवाह के कुछ सालों तक कितना खुश रहा करती थी। हँसती-खिलती बगिया के फूल की तरह कोमल और तितली-सी चंचल। नीलू से जुड़ी हुई एक-एक बात माँ के मस्तिष्क में चलचित्र की भांति आज भी सुरक्षित थी। माँ ने झुर्रियों से भरे अपने हाथ को पहले उसके ठुड्डी को छुआ। फिर चेहरे पर हाथ घुमाया और सफेद हो रहे बालों वाले उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "बेटा, अपने संतान को दुःखी देखकर किसी माँ को खुशी होती है भला? जो मुझे होगी? तेरी खुशी में ही मेरी खुशी है। मैं तेरा चिढ़चिढ़ापन, दुःख और निराशा को समझ सकती हूँ पर कमरे में ऐसे अकेले बैठे रहना कहाँ तक ठीक है? अभी तेरे सामने आधी जिन्दगी बाकी है। मैं तो आज और कल की मेहमान हूँ, आज हूँ कल का क्या पता?" नीलू ने अपने ठंडे हाथ को माँ के मुख पर रख दिया।

"माँ तू जानती है न! मुझे बाहर निकलना बिलकुल पसंद नहीं है। मैं बाहर निकलती हूँ तो मुझे डर लगता है। उस सवाल से...जिसे मैं बहुत पहले पीछे छोड़ आयी हूँ। वह सवाल रात और दिन मेरा पीछा करता रहता है, वह मेरे शरीर के प्रत्येक अंग में काँटे की तरह चुभता है। वह सवाल मेरे लिए कांटा है। जिससे आहत होकर मेरा शरीर बेजान हो गया है। उस काँटे को मैं हर बार निकाल फेंकना चाहती हूँ पर वह हर बार तैयार रहता है, मुझे आहत करने के लिए। तेरा पति कौन है? क्या करता है? कहाँ है? मुझसे पूछते हैं, काँटा कहाँ चुभा है? वो नहीं जानते काँटे के चुभन का क्या दर्द होता है।"

माँ उस काँटे के चुभन को अच्छी तरह जानती थी। किन्तु वह उसे पहले जैसा हँसता-खिलता हुआ देखना चाहती थी। उसने कहा, "बेटा मैं तेरी माँ हूँ! तेरे दर्द

को अच्छी तरह से जानती हूँ लेकिन इस काँटे को कब तक सहलाती रहेगी। जरा उस काँटे के दर्द से बाहर निकल दुनिया बहुत खूबसूरत है। मुझे पूरा यकीन है कि तू यह दर्द जरूर भूल जाएगी। आज शनिवार है, हनुमानगढ़ के मन्दिर जा तुझे अच्छा लगेगा।''

माँ ने उसे मंदिर जाने के लिए मना लिया था। वह भीतर गई और अलमारी को खोला। सबसे नीचे के खाने से साड़ियाँ बाहर निकालने लगी। आखिरी में उसे वह साड़ी मिल गई जिसे वह ढूँढ़ रही थी वह गुलाबी साड़ी। वह साड़ी पहनते ही अचानक उसके बेजान शरीर में मानो प्राण आ गये थे। अब वह मंदिर के लिए निकल पड़ी थी। आज वह कई महीनों बाद घर से बाहर निकल रही थी। उसने घर के बाहर कदम रखते ही ठंडी हवाओं ने उसके बालों को हलके से उड़ाया, सूर्य की कोमल किरणों के स्पर्श से उसमें नई चेतना का संचार हो गया था। उसके कुछ बाल भले ही सफेद क्यों न हो गये हों लेकिन उस समय पैंतालिस की उम्र में भी वह जवां-सी नज़र आ रही थी।

नीलू ने नांदेड के प्रसिद्ध हनुमानगढ़ के मंदिर के दर्शन किये और मंदिर परिसर में स्थित एक वृक्ष के नीचे जाकर शांत बैठ स्पीकर पर चल रहे भक्ति गीतों में लीन हो गई। यह मंदिर नांदेड के पुराने मंदिरों में से एक था। लगभग दो-तीन सौ साल पुराना। जो एक छोटे से पहाड़ पर स्थित था पर अब बस्ती के बढ़ने से पहाड़ अब नजर नहीं आता था। नांदेड के लोगों की हनुमान जी पर अपार श्रद्धा थी। उनका मानना था कि जो सच्चे दिल से हनुमान जी से माँगता है, उसकी इच्छा अवश्य पूरी होती है। यही कारण था कि यहाँ भक्तों का ताँता लगा रहता है। शायद नीलू ने भी हनुमान जी के चरणों में मस्तक टेक कर कुछ माँगा था।

नीलू को अपने पति निलेश की याद आ रही थी। वह कुछ देर उस वृक्ष के नीचे बैठने के बाद अपने घर की ओर चल पड़ी। अचानक एक खूबसूरत स्त्री के साथ निलेश जैसा कोई उसे नजर आया। उसने यह सोचकर उसे नजरअंदाज करना चाहा कि वह निलेश नहीं है। उसका भ्रम मात्र है पर जैसे-जैसे वे आगे बढ़ रहे थे वे स्पष्ट रूप से उभरने लगे थे। उसने दाएँ हाथ से अपनी आँखों को मसला और गौर से देखा तो सच में वह निलेश ही था। उसे अपने-आप पर विश्वास नहीं हो रहा था कि वह निलेश को अपने सामने देख रही है। जब दोनों ने एक-दूसरे को आमने-सामने देखा तो निलेश ने मुस्कुराकर अपना परिचय दिया। उसे लगा की हनुमान जी ने उसकी इच्छा पूरी कर दी। वह मन-ही-मन हनुमान जी के आभार प्रकट करने लगी थी।

निलेश को मुस्कुराते हुए देख नीलू के खुशी का ठिकाना नहीं रहा था। ऐसा लग रहा था कि दो बिछड़े प्रेमी मिल रहे हैं। उसके मन में आ रहा था कि वह उसे

गले लगाये, उसे अपने बाहुपाश में जकड़ ले। ताकि निलेश अबकि उससे कभी भी दूर न जाये पर यह सम्भव नहीं था। नीलू ही सोलह साल पहले निलेश को छोड़कर अपने माँ के पास आ गई थी। नीलू को सोलह साल पहले किये पर पश्चाताप हो रहा था। वह सोचने लगी थी कि, ''निलेश, मुझे माफ कर दो! मैं ही गलत थी, मैं न समझ थी पर तुम तो समझदार थे न। मुझे एक दो चपट लगा देते और मेरी खुमारी उतार देते पर तुमने कभी ऐसा नहीं किया। मैं घर छोड़कर चली आयी पर तुम मुझे कभी लेने के लिए आये नहीं। मुझे कुछ महीने बाद ही अपने आप पर पश्चाताप हुआ था। मैं इंतजार कर रही थी कि तुम मुझे आज नहीं तो कल लेने के लिए आओगे। मुझे डाँट-डपट कर एक-दो चपट जड़कर घर ले जाओगे पर तुम भी तो नहीं आये...।''

सब कुछ आँखों से और मौन बातें, शिकायतें, गुस्सा, खुशी अभिव्यक्त हो रही थी। निलेश अपनी तीसरी पत्नी को साथ ले आया था। निलेश ने नीलू की दो सैलून तक प्रतिक्षा की जब वह नहीं आयी, तब उसने तीसरी शादी कर ली थी। निलेश की पहली पत्नी जलकर मरने के बाद उसे चार संतान थी। वे नन्ने थे उन्हें सम्भालने के लिए उसने दूसरा विवाह किया था। निलेश की ड्यूटी ही ऐसी थी कि वह दो दिन बाद घर आता था। ऐसे में बच्चों की ओर कोई-न-कोई ध्यान देने वाला चाहिये था। निलेश की माँ थी पर वह बूढ़ी थी। आगे चलकर जब नीलू को एक लड़की हुई और सौतेले बच्चों से अनबन होने लगी थी। एक ओर निलेश से उसकी इच्छा पूरी नहीं हो रही थी तो दूसरी ओर सौतेले बच्चे। एक दो बार निलेश के नीलू की छोटी बहन से बढ़ती नजदीकियाँ नीलू को रास नहीं आयी। जब निलेश को उसकी बहन के साथ संदिग्ध अवस्था में देखा तो वह बोखला गई। वह अपने लड़की का भविष्य खतरे में जान अपना हिस्सा लेकर माँ के घर चली आयी।

मंदिर में निलेश अपनी तीसरी पत्नी के कहने पर आया था। उसे नांदेड देखने की इच्छा कई सालों से थी। वह नांदेड से सौ किलो मीटर दूर एक कस्बे में रहते थे। आज निलेश ने उसकी इच्छा पूरी की थी। प्रकृति के सानिध्य में पहाड़ पर स्थित रत्नेश्वरी, कालेश्वर का प्राचीन मंदिर, दस गुरुद्वारे, फाऊटन शो, गोविन्द बाग़, शोपिंग मोल और अब हनुमान मंदिर। मंदिर में निलेश और नीलू की चाहकर भी बात नहीं हो पायी थी। निलेश सोच रहा था कि ''नीलू मुझे माफ करना। मैं ही तुम्हें समझ नहीं पाया था पर नीलू मैं तुम्हारा दो सालो तक इंतजार करता रहा। मैं तीसरा विवाह नहीं करता पर तुम्हारे जाने की खबर सारे कस्बे में फैल गई थी। सब लोग यही कहते कि निलेश की पत्नी भाग गई। मुझे लगा तुम किसी और से प्रेम करने लगी हो। मुझे किसी ने बताया की तुम दोनों विवाह करने वाले हो। मैं क्या करता बदनामी सह नहीं सकता था। तुम्हें और समाज को दिखाने के लिए मैंने तीसरा

विवाह कर लिया था। नीलू अब हम चाहकर भी एक नहीं हो सकते। मैंने जो गलतियाँ की हैं, मैं वहीं गलती दोहराना नहीं चाहता। अब मैं इसके साथ खुश हूँ पर तुम मुझे हमेशा याद आती रहोगी। मैं मन से सदा तुम्हारे पास रहूँगा।"

नीलू निलेश से बिना बात किये आगे निकल गई। उसकी आँखों में आँसू और पुरानी यादें थीं। कुछ दूर गई ही थी कि उसके पैरों में काँटा चुब गया और उसके मुख से अनायास निकल पड़ा, "निलेश...।"

निलेश ने उसकी ओर देखा पर वह विवश था। उसने अपने मन को समझाया और मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ गया। इधर काँटा चुभते ही उसे याद आया, जब उनकी नई-नई शादी हुई थी निलेश नीलू को अपने खेत ले गया था। तब नीलू बहुत खूबसूरत थी उसकी त्वचा दूध-सी सफेद थी। मुलायम लम्बे बाल, पतले नाजुक होंठ, पतला कमनीय शरीर, तीखी नाक, सबकुछ किसी अप्सरा जैसे सुंदर और आकर्षक था। कस्बे के सारे जवान लड़कों की वह धड़कन थी। निलेश भी पुरानी फिल्मों के हीरो जैसे था।

उस दिन जब निलेश अपना खेत दिखा रहा था। तब अचानक एक काँटा नीलू के पैरों में चुभ गया था और जोर से चिल्ला उठी थी।

"निलेश..."

निलेश दौड़ता हुआ आया था। अपनी जान से भी प्यारी पत्नी के नाजुक पैर में काँटा चुभने से दर्द से वह लाल हो गई थी। निलेश ने उसके पैरो से हलके से काँटा निकाल दिया था। उसे पता भी नहीं चला कि काँटा कब निकल गया था। नीलू को अपनी गोद में उठाकर आँसे लदे घनी छाह वाले वृक्ष के नीचे ले गया। उसे मुलायम घास पर बिठाया और अपने नौकरों के साथ खेत में जितने भी काँटो के पेड़ थे, उन सब का सफाया कर दिया था और आगे ख़ास नीलू के लिए सड़क बनायी थी।

नीलू ने मन्दिर परिसर में चुभे काँटे को निकाल कर कूड़े में फेंक दिया और लँगड़ाते हुए अपने घर चली आयी और अपने कमरे में धंस गई। उसने पैरों में चुभे काँटे के दर्द को महसूस किया। वह सो गई जब वह उठी तो उसके काँटे का दर्द खत्म हो गया था। उसने साड़ी के पल्लू को कमर में कसा और पड़ोस के हेमा से बात करने उसके घर चली गई।

निलेश ने मंदिर दर्शन के बाद कहीं से झाडू उठाया और मंदिर का परिसर साफ एवं स्वच्छ कर दिया था।

घौसला...प्रायश्चित

वह अपना घौसला ढूँढ़ रही थी। उसने अपना घौसला बड़े जतन से और प्यार से तिनका-तिनका चुन-चुनकर बनाया था। घौसले के हर एक तिनके में उसका परिश्रम समाया हुआ था। उसने अपने जीवन का एक-एक अमूल्य पल उसके निर्माण में दिया था। आनेवाले नन्हें आहट के लिए, बड़े उत्साह से आनंद और उल्लास के साथ, वह घौसला बना था। उसने कई पेड़ों में से उस पेड़ का चयन किया था। उसने घौसला बनाने के लिए कई पेड़ों को जाँचा था। अच्छी तरह से परखा था एक-एक पेड़, एक-एक डाली वह देख आई थी पर उसमें उसे कोई पेड़ रास न आया था। उसने देखा था,...नीम का पेड़, बबुल, बादाम, नारियल, अमरुद, आम, जास्वंद, स्वास्तिक, अनार, करियापाक, सीताफल, रामफल आदि। कई पेड़ों को उसने नकार दिया था। कहीं ज्यादा शोरगुल था तो कहीं बल्ब का तीव्र प्रकाश था। तो कहीं घौसले के लिए स्थान सुरक्षित न था पर उसने जिस वृक्ष का चयन किया था वह सुरक्षित भी था और रात में उस डाली पर अँधेरा भी रहता था और शान्ति भी थी। सो उसके होने वाले बच्चों के नींद में खलल का सवाल ही नहीं पड़ता था। उसने हमारे घर के आँगन में पश्चिम दिशा की ओर स्थित जामुन के वृक्ष का चयन किया था।

वह जामुन का वृक्ष हमारे आँगन में अपने आप उग आया था। उसे लगाया नहीं गया था। बल्कि एक बार कहीं से वह जामुन खाने के लिये लाया गया। जामुन का आकार बड़ा था और वह मीठे एवं रसीले थे। मुँह में डालो तो ऐसे ही पिघल जाये। उस दिन खरीदे हुए जामुन का खूब लुफ्त उठाया गया था। एक-एक जामुन खूब मजे ले ले कर खाया गया था और गुट्लियों को आँगन के पश्चिम दिशा की ओर फेंका गया था। वर्षा हुई थी और एक दिन उस गुटली में से एक नन्ने से अंकुर ने जन्म लिया था। वह धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। पहले ऊँगली भर था फिर एक बालिश (बिलांग) का हुआ। आगे पैरों तक फिर कमर तक, कंधो तक और फिर हमसे भी

बड़ा हो गया था। हम घर में खुश थे कि बड़ा होकर यह पेड़ हमें वैसे ही मीठे, रसीले जामुन देगा। सो उसके लिये उसकी देख भाल भी करना पड़ा था। कई बार बकरियों ने उसके पत्ते खा लिये थे तो कई बार गाय ने उसका सिरा तोड़ दिया था। एक बार तो तूफान में वह पेड़ मरते-मरते बच गया था। उस दिन मैं बड़ा दुःखी हुआ था। अब वह पेड़ दो भागों में बँट गया था। उसमें से दो शाखाओं ने जन्म लिया था। दोनों भी आपस में जब बड़े हो रहे थे, तब मानो लग रहा था कि वे आपस में स्पर्धा कर रहे हो। अब पेड़ छह साल का हो गया था और उसे पहली बार जामुन लग रहे थे। उसे देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई थी कि हमारे पेड़ का जामुन...हमारा अपना जामुन। कुछ अलग ही बात थी उस दिन। जब वह दस साल का हुआ था, तब उसने अपना आकार विशाल रूप में ग्रहण कर लिया था। वह गली में अपनी छाप छोड़ रहा था सबकी नजरें उस पर पड़ रही थीं। जब भी वह मीठे रसीले जामुन से लद जाता तो हर आने-जाने वालों को अपनी ओर आकर्षित करता था। वह था ही ऐसा कि उसे देख कर अच्छे-अच्छों के जबान से लार टपक जाये। ऐसे में पक्षी भला कैसे इस पेड़ से अछुते रहते। कई प्रकार के पक्षी अतिथि बनकर जामुन खाने के लिए आते थे। हमने भी उनका स्वागत ही किया था। कभी उन्हें परेशान नहीं किया था। वे जामुन खाते और अध खाये जामुन नीचे फेंक देते थे या गुट्लियाँ। एक बार तो बंदरों की टोली ने जामुन के वृक्ष पर अपना डेरा जमा लिया था। उन्होंने कुछ ही पलों में पेड़ के आधे जामुन खत्म कर दिये थे। कुल मिलाकर पशु-पक्षी, जानवर, इंसान सबको वह वृक्ष बहुत प्रिय था।

उस छोटी-सी चिड़िया को हमारा यह जामुन का वृक्ष भा गया था। सो उसने वहीं डेरा जमा लिया था। वृक्ष पत्तों के कारण घना और छायादार था। गर्मियों में तो वह तेज धूप से रक्षा करता था। उसकी छाया में हम अक्सर बैठा करते थे क्योंकि गर्मियों में बिजली गुल होने पर भीतर भीषण गर्मी होती थी। यहाँ शीतलता महसूस होती थी। सो बाहर आँगन में जामुन की छाया में बैठक जम जाती थी और इस बहाने से कई विषयों पर बातें हो जाती थी। एक बार जब मैं बाहर बैठा था, तब जामुन के पेड़ को नीचे बैठे-बैठे निहार रहा था। मैंने देखा कि एक छोटी-सी चिड़िया पेड़ की एक शाखा के एक डाली के पत्ते के नीचे घौसला बना रही थी। वह अपनी नन्ही चोंच में न जाने कहाँ-कहाँ से बड़े करीने से बिलकुल एक ही जैसे तिनके ला-ला कर अपने घौसले में पिरो रही थी। देखते-ही-देखते दो दिनों में उसने अपना पक्का घौसला बना लिया था। जैसे ही घौसला बनकर तैयार हो गया था। वह भीतर चले गई थी। उसने भीतर से अपनी गर्दन बाहर निकाली और बाहर का दृश्य देखने लगी। वह उस समय बेहद खुश थी। वह कोई गीत गुनगुना रही थी हवाएँ भी मधम गति से चल रही थी। ठंडी हवा का स्पर्श उसे और मुझे दोनों को पुलकित कर रही थी।

उस दिन मैं भी उसकी खुशी में शामिल था। मुझे भी बेहद प्रसन्नता हुई कि नन्ही-सी चिड़िया ने हमारे आँगन में अपना घौसला बना लिया था। यह खुश ख़बरी मैंने बच्चों की तरह अपने घर में सब को सुनाई थी। उस दिन बिलकुल मैं बच्चों की तरह ही तो खुश था। अब रोज नन्ने चिड़िया की मधुर आवाज सुबह श्याम कानों में संगीत की भाँति गूँजने लगी थी। रोज उस चिड़िया की दिनचर्या को निहारना मेरा प्रतिदिन का एक हिस्सा बन गया था।

एक दिन वह जामुन के पास वाले स्वास्तिक के पेड़ पर एक डाली से दूसरी डाली पर फुदक रही थी। उसमें भय मिश्रित व्याकुलता साफ-साफ नज़र आ रही थी। घौसला अब अपने स्थान पर नहीं था। वह अब गायब हो चुका था। जिस डाली पर उसने बड़े जतन से घौसला बनाया था, उस दिन वह समूची डाली ही गायब हो चुकी थी। घौसले को अपने स्थान पर न पा कर वह अपनी छोटी-सी चोंच से जोर-जोरों की आवाज कर रही थी। उस दिन छोटी-सी जान से ऐसी आवाज बाहर निकल रही थी कि उसे सुनने वाले का हृदय भी पिघल जाये। उसकी आवाज में क्रन्दन था, दुःख था। उसकी आवाज सुनकर उसकी मदद के लिये तुरन्त दौड़ कर जाने की इच्छा हो रही थी।

ची-ची-ची-ची...ची-ची-ची-ची की आवाज सारे वातावरण में छा गई थी। मानो वह चीख-चीख कर कह रही हो कि "मेरा घौसला कहाँ है? कहाँ है मेरा घौसला? यहीं तो था मेरा घौसला, आखिर कहाँ चला गया? किसी ने देखा मेरा घौसला? क्या हुआ मेरे घौसले के साथ? कौन उठा ले गया मेरे घौसले को? कितने प्यार से बनाया था, मैंने अपने बच्चों के लिए। घौसले में मेरे दो अंडे थे। जल्द ही उन अंडों से दो नन्नी-नन्नी चिड़िया बाहर आने वाले थी। अभी उन्होंने इस दुनिया में कदम भी नहीं रखा था।"

उसके मन-मस्तिष्क में भांति-भांति के विचार कौंद रहे थे। वह बुरी तरह से भयभीत थी। सशंकित थी कि कहीं कुछ अनिष्ठ तो नहीं हो गया। उसका हृदय तेज गति से धड़कने लगा था। उसके मन में रह-रह कर बुरे-बुरे ख़याल आ रहे थे कि कहीं किसी ने मेरे अंडे को..."नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता, मैं ऐसा सोच भी कैसे सकती हूँ। कुछ नहीं हुआ मेरे अण्डों के साथ।"

सोचते-सोचते उसका दिल बैठा जा रहा था। बहुत समय तक वह क्रन्दन करती रही थी। पेड़-पौधे भी मानो कुछ समय के लिए स्थिर हो गये थे। अचानक हवा भी बंद हो गई थी। वातावरण में अजब-सी शांति छाई हुई थी। सिवाय उसके दिल को चिर देने वाली आवाज के...। सहसा वह कुछ सेकण्डों के लिये कहीं उड़ गई थी। अब की बार उसके साथ एक चिड़िया साथ में आ गई थी। शायद वह उसकी आवाज को सुनकर आ गई थी। उसका हालचाल पूछने के लिए। उसने क्रंदन करती

चिडिया से पूछा था।

"क्या हुआ बहन, ऐसे क्यों रो रही हो? क्या कोई दुःखद घटना तुम्हारे साथ हुई है?" नन्नी चिड़िया ने जवाब स्वरूप कहा था।

"बहन, क्या बताऊँ तुम्हें। मैंने बड़े जतन से इस पेड़ की डाली पर घौसला बनाया था। उसमें मेरे दो अंडे थे। कुछ ही दिनों में नन्नी चिड़िया उन अण्डों से बाहर आने वाली थी। वह डाली और घौसला दोनों गायब हो गये हैं।"

नन्नी चिड़िया उड़-उड़ कर वह स्थान दूसरी चिड़िया को बता रही थी। जिस स्थान पर वह घौसला हुआ करता था, अब वहाँ कुछ भी नहीं था। उसके इस अवस्था को देख कर मेरा मन बहुत व्याकुल हो रहा था। दूसरी चिड़िया उसे धीरज बंधा रही थी कि सहसा नन्नी चिड़िया की नजर जिस शाख से डाली तोड़ी गई थी वहाँ के छोटी-सी टहनी के पत्तों के बीच में बने घौसले पर पड़ी। उसने गर्दन टेडी कर उस घौसले की और देखा तो उसके निराश हृदय में एक आशा की किरण ने जन्म लिया था। उसने अपने नन्ने पंखों को फैलाया और पलक झपकते ही घौसले के पास पहुँच गई। पहले-पहल उसने घौसले को दूर से ही निहारा था। उसने घौसले को गौर से देखा वह घौसला उसके घौसले जैसा दिख रहा था। उसमें मन में कुछ शंका के भाव उत्पन्न हुए थे। वह सोचने लगी कि "क्या यह घौसला मेरा है? दिखता तो मेरे घौसले जैसा है...पर...नहीं-नहीं, जहाँ मेरा घौसला था, वहाँ तो अब कुछ भी नहीं।"

वह वापस दूसरी चिड़िया के पास लौट आयी थी। उसने दूसरी चिड़िया को बताया था पर...उसके मन में पुनः वही प्रश्न उत्पन्न हो रहा था।

"मेरा घौसला वहाँ था पर यह घौसला किसका है?"

ऐसे में और एक चिड़िया उड़ते हुए वहाँ पर आई थी। उसे भी सारा वृतांत सुनाया गया था। सहसा उसने घौसले की ओर इशारा करते हुए उस चिड़िया से पूछा था, "बहन, कहीं यह घौसला आपका तो नहीं है?"

उस चिड़िया ने इंकार कर दिया था। उसने बताया था कि उसका घौसला तो अन्य पेड़ पर है। वह उसकी आवाज सुनकर दौड़ी चली आई थी। उसने कुछ सोचा, यहाँ तो सिर्फ मेरे अकेली का घौसला था। सिवाय एक खाली पड़े घौसले के...। पर हो सकता है किसी और चिड़िया ने घौसला बनाया होगा। जिसकी खबर मुझे न लगी हो। "नहीं-नहीं कोई चिड़िया यहाँ घौसला बनाती तो मुझे अवश्य पता चल जाता।" वह समझ नहीं पा रही थी कि उसे खुश होना है या दुखी होना है। वह द्वन्द्वात्मक स्थिति से गुजर रही थी। उसका मन अस्थिर था। जिस डाली पर उस चिड़िया का घौसला बना था वास्तव में उस डाली को तोड़ा गया था। क्योंकि जामुन की उस डाली के कारण उस पेड़ के साथ ही बड़े हुए स्वास्तिक के पेड़ का आधा हिस्सा सूर्य की किरण न पहुँच पाने के कारण सुख गया था। जामुन की उस डाली ने स्वास्तिक के

उस पेड़ पर पड़ने वाले सूर्य की रौशनी को रोक दिया था। सूर्य की रोशनी के बगैर किसी भी पेड़ का अधिक दिनों तक जीवित रहना कठिन होता है। इतना ही क्या मनुष्य का भी बिना सूर्य के अधिक दिनों तक जीवित रहना मुश्किल हो जाता है। फिर भी स्वास्तिक तो एक फूल का पेड़ था। स्वास्तिक और जामुन की आयु लगभग एक ही थी। स्वास्तिक की वृद्धी एक समय के उपरान्त रूक गई थी पर जामुन का पेड़ तो उस से कई गुना ऊँचा हो चुका था। दोनों मानो बचपन के सखा थे पर एक सखा ऊँचा था तो दूसरा बौना था। फिर भी उसके सौन्दर्य में कभी कमी नहीं आई थी क्योंकि इस जाति के पेड़ की ऊँचाई कम ही होती है। स्वास्तिक के पेड़ की ऊँचाई लगभग दस फिट थी। वह अब प्रौढ़ हो चुका था उसका तना मजबूत था, मानो कसा हुआ शरीर जैसा हो। इस पेड़ पर सफेद फूल जब खिलते तो एक अलग ही समा बन जाता था। उसकी महक तो नहीं होती थी पर उन फूलों का प्रयोग पूजा में किया जाता था। पास ही गुलाब के भी कुछ पौधे थे उसकी महक आते रहती थी पर हमें जरा भी मलाल नहीं था कि उसमें खुशबू नहीं है। उस पर जब फूल लद जाते तो दृश्य देखने लायक होता था। जब फूल एक साथ खिलते तो सारा पेड़ सफेद नजर आता था और जब उसके फूल मुरझा कर नीचे गिर जाते तो एक साथ नीचे की जमीन को ढक लेते थे। ऊपर भी सफेद और नीचे जमीन भी सफेद प्रकृति के सौंदर्य को चाहने वालों के लिए तो यह एक उपहार ही होता था। उसे शब्दों में बयान करना तनिक कठिन-सा लग रहा है। इस पेड़ के फूलों का प्रयोग घर में नित्य पूजा के लिए किया जाता था। इतना ही नहीं गली के कई लोग इस पेड़ के फूलों को पूजा के लिए तोड़ कर ले जाया करते थे। कुछ लोग तो मुँह अँधेरे ही फूल तोड़ ले जाया करते थे। जब गणपति उत्सव मनाया जाता है तो चहुँ ओर आनंद का वातावरण होता है। ऐसे में गणपति के पूजा के लिए कई लोग फूल तोड़ कर ले जाया करते थे। वह पेड़ अब केवल हमारा नहीं रहा था। बल्कि उस पर कई लोगों का अधिकार बन गया था। कईयों को फूल न तोड़ने के लिए कहने पर भी वे जबरन आ जाया करते या छिप कर तोड़ कर ले जाए करते थे। तो कुछ लोग भगवान का नाम लेकर हमारी बोलती बंद कर देते थे। सो अब हमारा पेड़ सार्वजनिक हो गया था। स्वास्तिक का पेड़ हमारे आँगन की शान था। उसे देख कर मैं प्रसन्नता का अनुभव करता था। उसका सौन्दर्य मन को प्रफुल्लित करता था। उससे प्राप्त होने वाले आनंद से वह पेड़ हमे इंसान के जैसा लगने लगता था, वह हमारे घर का ही मानो सदस्य था। जब जामुन के उस डाली के कारण पेड़ का आधा हिस्सा सुख रहा था, तब हमे यह निर्णय लेना पड़ा था कि जामुन की उस डाली को ही काट दिया जाये। एक डाली को तोड़ कर जामुन का कुछ बिगड़ने वाला भी नहीं था और बरसात भी चल रही थी, सो कुछ ही दिनों में तोड़ी हुई डाली के स्थान पर फिर से नये पत्ते आने शुरू हो जाएँगे और

स्वास्तिक का पेड़ भी जी पाएगा। पिता जी ने उस डाली को तोड़ना शुरू किया था। मैं भूल गया था कि उस डाली पर उस चिड़िया का घोसला है। अब कई दिन हो गये थे चिड़िया उस घौसले में कभी-कभार ही दिखाई देती थी। सो पिताजी को लगा की वह घौसला खाली ही होगा। वास्तव में खाली घौसला दूसरी डाली पर था। वे उसे ही खाली घौसला समझ बैठे थे। डाली अब टूट कर नीचे गिर गई थी स्वास्तिक के ऊपर की बाधा अब कम हो गई थी। अब स्वातिक के पेड़ पर सूर्य की रौशनी पड़ रही थी। स्वास्तिक अब प्रसन्न था सुखी डालियाँ अब जीने वाली थी। हम भी खुश थे कि फिर से स्वास्तिक का वही सुंदर रूप दिखाई देने वाला था। टूट कर नीचे गिरी डाली को साफ करना था। उसको उठाकर उसके टुकड़े किये जा रहे थे। ऐसे में मैंने उस घौसले को देखा कहीं इसमें अंडा तो नहीं था। मैंने उस घौसले को टहनी से अलग किया था। हाथ में लेकर उसे देखा तो क्या था। उसमें एक अंडा जीवित बाकी था। मैंने पिताजी से कहा पिता जी इसमें अंडा है। तब पिताजी पछताने लगे थे।

"अरेरे..., ये मेरे हाथो से क्या हो गया।"

अब पश्चाताप के दूसरा उपाय नहीं था पर मुझे एक तरकीब सूझी और मैंने पिताजी से कहाँ, "बाबा, इसे हम जहाँ से डाली तोड़ी गई है। उस स्थान पर टहनी में इसे बाँध देते हैं। काम भी हो जाएगा और चिड़िया को वापस उसका घौसला भी मिल जाएगा।"

पिताजी को राहत मिली थी वे खुश हो गये थे। पिताजी ने ही उस डाली से उसे ऐसे बांधा की उसे देख ऐसे लगता की वह पहले से ही वहीं हो। घौसला अब पेड़ की डाली पर था। फर्क सिर्फ था तो वह यह कि उसका स्थान बदल गया था। उसने अपना घौसला लगभग ढूँढ़ लिया था। वह फिर से उस घौसले के पास गई। गौर से देखने पर पता चला कि वह घौसला उसका ही था। वह घौसले के द्वार से भीतर गयी उसने देखा भीतर अंडा सुरक्षित था। कुछ समय तक वह भीतर बैठी रही थी। उसने गर्दन बाहर निकाल कर देखा! फिर उसने सोचा कि 'यह घौसला तो मेरा है पर मेरा घौसला यहाँ कैसे आया?"

वह परेशान थी। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। ऐसे कैसे हो गया? घौसला अपना स्थान कैसे बदल सकता है। न जाने यह भगवान का कैसा खेल है। उसके मन में रह-रह कर विचार आने लगा कि 'आखिर यहाँ क्या हुआ था? कैसे मेरा घौसला यहाँ आ गया?' सोचते-सोचते उसे कब नींद लग गई पता ही नहीं चला था। जब वह जाग गई तो पूर्ववत काम पर लग गई थी। हम थोड़ी राहत लेकर बैठे ही थे कि अचानक फिर से उसी नन्ही-सी चिड़िया की ची-ची की दिल को चीरने वाली आवाज आने लगी थी। बाहर आ कर देखा पता चला कि उसका एक अंडा जमीन पर गिरने से टूट गया था। यह उसका दूसरा अंडा था उसे देख कर पश्चाताप हो

रहा था। आत्मग्लानी से मन बोझिल हो गया था। कुछ दिनों बाद पेड़ की उसी डाली पर नजर डाली थी। घौसला फटा हुआ था। वह अब खाली था चिड़िया उस घटना के बाद से कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। न उसकी ची-ची की आवाज...न नन्नी चिड़िया। उसके बिना आँगन सूना लग रहा था। स्वास्तिक फूलों से लद गया था गुलाब खिल गये थे। अनार के घने पत्तों में अनार लग रहे थे। कमी थी तो बस उस नन्नी-सी चिड़िया की...। एक दिन सुबह अनार के पेड़ पर मेरी नजर पड़ी थी। नये मेहमानों ने अनार के घने पत्तों के बीच एक डाली पर घर बना लिया था। वहाँ मधुमक्खियों ने अपना छत्ता बना लिया था।

पापा मुझे कहीं नहीं ले जाते

उस दिन आसमान साफ था। सूर्य की कोमल किरणें धरती का स्पर्श कर रही थी। अनुज स्कूल से आते ही अपने दादा के कंधे पर चढ़ गया था। अनुज के पापा भी अपने पोते के स्कूल से घर वापस लौटकर आने से पहले ही घर आ चुके थे। दादा अमरसिंह को नौकरी से रिटायर्ड हुए अब लगभग दस-बारह साल हो चुके थे। अमर और अनुज की पक्की बनती थी। अमर अनुज के साथ बच्चे बन जाते और बालपन का पूरा आनंद लेते थे। एक दिन अनुज दादा के कंधे पर चढ़ कर जिद करने लगा, 'दादा-दादा चलो बाहर घूमने चलते हैं। दादा आप अकेले बाहर घूमने के लिए जाते हो और मुझे आप साथ नहीं ले जाते हो। चलो न दादा...मुझे भी ले चलो ना...पापा मुझे कहीं नहीं ले जाते।"

अमरसिंह अनुज को समझाते हुए कह रहे थे, "नहीं बेटा, मैं घूमने नहीं जाता। मैं काम पर जाता हूँ। मैं काम नहीं करूँगा तो अपना घर कैसे चलेगा।" अनुज जैसे किसी बड़े व्यक्ति से हाँ में हाँ मिला रहा था। जैसे ही दादा की बात खत्म हुई फिर से वह अपनी जिद पर अड़ गया था। "नहीं...वह कुछ नहीं। मैं आपकी कोई बात नहीं सुनने वाला।"

दादा के सिर पर बचे हुए आधे बालों को खींचता हुआ, "चलो दादा...नहीं तो मैं आपके सारे बाल उखाड़ दूँगा।"

दादा पोते की इस बालभरी धमकी से कुछ कराहता, हँसता हुआ-सा कहने लगा, "हाँ...हाँ मैं तैयार हूँ। पहले मेरे बालों को तो छोड़ दे। मेरे बस इतने ही बाल बचे हैं। इसे भी उखाड़ देगा, तो सारे लोग मुझे टकलू-टकलू कहकर पुकारेंगे। जब सब लोग मुझे टकलू कहकर पुकारेंगे तो क्या तुम्हें अच्छा लगेगा?"

अनुज समझदार व्यक्ति-सा पर दादा, मैं तो नाटक कर रहा था। सच्ची में थोड़े ही न मैं बाल उखाड़ने वाला था।"

दादा-पोते की बातों में सूर्य कब बादलों के पीछे छिप गया था, पता ही नहीं चला था। सहसा अचानक बारिश शुरू हो गई थी। बारिश धीमी गति से फिर तेज हुई और फिर धीमी हो गई थी। अनुज के बाल आरमानों पर बारिश ने पानी फेर दिया था। वह थोड़ा रुआसा ओ गया था।

स्कूल छूटने से एक ऑटो पड़ोस के दरवाजे के पास आकर रुका ही था कि अनुज ने कहा, "अब मोहन भीग जाएगा।" मोहन के पापा छाता लेकर बाहर आ गये और मोहन को एक हाथ से गोद में उठा लिया और मोहन बिना भीगे घर के भीतर पहुँच गया। जब तक मोहन को उसके पिताजी भीतर नहीं ले जाते, तब तक अनुज झुक-झुक कर देखने लगा। जब मोहन भीतर चला गया तब अनुज ने अपने दादा से प्रश्न किया, "दादा, पापा मुझे मोहन के पिता के जैसे गोद में क्यों नहीं उठाते?" बच्चे के मासूम सवाल से दादा अमरसिह के बूढ़ी आँखों में आँसू छलक गये थे। जब दादा ने अनुज के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। तब अनुज अपने दादा के चेहरे को गौर से देखने लगा। दादा की आँखों में आँसुओं को देख कर अनुज कहने लगा, "दादा क्या हुआ...आप क्यों रो रहे हो। मैंने कुछ गलत कह दिया क्या?" दादा ने आँखें पोछते हुए कहा, "नहीं बेटा, तू कभी गलत नहीं बोलता। बोलता भी तो कोई बात नहीं बेटा। आँखों में थोडा कचरा चला गया था न इसीलिए...चल छोड़ अब कचरा निकल गया है।" बालक अनुज के सम्मुख दादा मुस्कुरा रहे थे।

"चल बेटा, अब बारिश बंद हो गई है। हम बाहर घूमने चलते हैं और पप्पा तुझे नहीं उठाते तो क्या हुआ मैं तो तुझे उठाता हूँ न...तो फिर चल चलते हैं।" अनुज अपने दादा के कंधे पर बैठकर बाहर घूमने चला गया।

अनुज के पिता सोहन ने अपने बच्चे और पिता की बात सुन ली थी। वह कमरे के एक कोने में बैठा था। उसके चेहरे पर उदासी, बेबसी, लाचारी, मज़बूरी साफ-साफ देखी जा सकती थी। उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ लगातार बह रह थीं। उसने अपने अपाहिज हाथों से आँसू पोंछे पर आँसू थे कि थमने का नाम नहीं ले रहे थे। सोहन को बेटे के उस मासूम सवाल ने भीतर तक घायल कर दिया था। मानो वह उस चोट से बुरी तरह घायल हो गया वह रोते जा रहा था। अपने मुँह से निकलने वाली आवाज को उलटे हाथों से दबाने का प्रयास कर रहा था। सोहन दोनों हाथों, पैरों से आपहिज था पर प्रकृति के आशीर्वाद से वह चल फिर सकता था। छोटे-छोटे काम वह दोनों हाथों से कर लेता था। उसकी बेहद इच्छा थी कि पढ़ लिखकर वह बहुत बड़ा आदमी बने पर उसका अपाहिजपन आड़े आ गया था। पहले तो वह चल भी नहीं पाता था पर उसने धीरे-धीरे धीमी गति से चलना सीख लिया था। उसे पढ़ न पाने का गम था। वह हर माँ-बाप की तरह अपनी इच्छा-आकांक्षाओं को अपने बेटे में पूरा होते हुए देखना चाहता था। वह अनुज से बेहद प्रेम करता

पर उसके साथ खेल-कूद नहीं सकता था। सोहन ठीक से बोल नहीं पाता था। बहुत कोशिश करने के बाद उसके मुख से गढ़े-अनगढ़े शब्द हकलाते हुए निकल पाते थे। सामने वाला एक तो अनुमान से पता लगा ले या समझ ले। उसे प्रत्येक शब्द के उच्चारण में विशेष प्रयास करना पड़ता था उसे बात करने में तकलीफ होती थी। कई बार कुछ बच्चे उसका मजाक उड़ाते, उसकी नकल उतारते थे। सोहन जब अपने आप को मजाक बनते देखता तो, वह बाहर से मुस्कुराता पर भीतर से अश्रुओं की अजस्त्र धाराएँ लगातार बहने लगती थी। उसके अपाहिजपन के कारण कुछ लोग बात तो करते पर कुछ ही पल के लिए। अक्सर सोहन अकेला रहता था। वह दुःख, निराशा, हताशा के कारण अपने आप में ही खोया-खोया-सा रहता था।

सोहन जब भी अकेला होता तब आँसुओं को बहाते हुए ईश्वर को कोसता कि "हे ईश्वर! मुझे ऐसा क्यों बनाया? न मैं ठीक से चल सकता हूँ, न बोल पाता हूँ। मैं कोई भी काम ठीक ढंग से नहीं कर पाता। मुझसे कोई दोस्ती नहीं करता मैं अपने बच्चे को, अपने हाथों से उठा नहीं सकता। न ही अनुज के दादा की भांति कंधे पर घूमा सकता हूँ। मैं अपने माँ-बाप पर बोझ हूँ। मुझे इस धरती पर क्यों भेजा? भेजना ही था तो औरों की तरह स्वस्थ व्यक्ति के रूप में भेजता।"

सोहन अपनी इच्छाओं, आकाँक्षाओं को अनुज के माध्यम से पूरा करना चाहता था। वह अक्सर अनुज से कहता, "बेटा, मैं अपाहिज होने के कारण नहीं पढ़ पाया। पर तू जरूर खूब मन लगाकर पढ़ना और एक दिन मोहन के पापा जैसा बड़ा आदमी बनना।" अनुज भी बड़े व्यक्ति-सा...हाँ में हाँ मिलाता था। सोहन उसे देख-देख प्रसन्न होता। सपने देखता, कल्पना करता कि अनुज पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बन गया है।

कैंची

वह कंगइ को बालों में घुमाता और उसी हाँथ के दो उँगलियों में बालों के सिरों को पकड़ता और दायें हाथ में थामे हुए कैंची से बालों के सिरों को ऐसे काटता जा रहा था मानो कोई दुश्मनों की गर्दन उड़ा रहा हो। मैंने सहज कहा, "गोविंद जी, आप तो मेरे बाल ऐसे काट रहे हो जैसे कोई दुश्मनों की गर्दन उडाता है!"

उसने हँसते और जोरदार भारी आवाज में कहा, "मुझे हर बाल, सीमा पार के देश के दुश्मन और गद्दार लगते हैं। इसीलिए मैं कैंची ऐसे चलाता हूँ कि जैसे कोई दुश्मनों पर गोलियाँ दाग रहा है। हर कटकर गिरता हुआ बाल मुझे गिरते हुए दुश्मनों की याद दिलाता है।" गोविंद की बातों से मैंने अनुमान लगा लिया था कि इसमें अभी भी देशभक्ति और दुश्मनों के प्रति गुस्सा भरा हुआ है।

कैंची "कच कच कच कच कच कच" की आवाज के साथ अपना काम कर रही थी। दुश्मन बाल धड़ाधड़ धाराशाही हो रहे थे। जैसे-जैसे बाल धाराशाही होते जा रहे थे, गोविंद का मुख उज्ज्वल होते जा रहा था। मानो वह कोई जंग जीतते जा रहा हो। हर गिरते बाल के साथ उसका चेहरा दमकने लगता था। मैंने उनसे कहाँ, "गोविंद जी, जरा टी.वी. तो चला देना। सुबह की ताजा खबरें सुनते हैं।"

गोविंद ने पुराना छोटा टी.वी. ऑन किया और एक चैनल पर सुबह की खबरें आरम्भ हो गयी। समाचार में हेडलाइन दिखाए जा रहा था। "सीमा पर आतंकवादियों का अचानक हमला हुआ और भारत के 18 जवान शहीद हुए।"

यह समाचार सुनना ही था कि गोविंद ने अपनी जिन्दगी में जितने भी बिना कपड़ों वाली गालियाँ सीखी थीं, उन गालियों की गोलियों-बम-तोफों से उसने आतंकवादीस्तान के आतंकवादियो को भुनना शुरू कर दिया था। उसकी गालियों के विस्फोट से आस-पड़ोस हिल गया था। मैंने गोविंद का उस दिन रोद्र रूप देखा था। मैं भी समाचार सुनकर सिर से पैर तक लाल पिला हो चुका था। मन-ही-मन मैंने

भी अपनी जिन्दगी में जितनी गालियाँ समाज द्वार सीखी थी। उन सब का प्रयोग कर डाला था।

"मेरे हाथ में आज गन होती तो अभी सीमा पर जाकर उन आतंकियों को नेस्तनाबूत कर देता। साले-कमीने पीछे हेमराज और सुधाकर का सर काट कर ले गये और अब...हारामी साले। नामर्द...अरे दम है तो सीने पर वार करो। यह कैसा ...वार कर रहे हो। अगर सचमुच एक बाप की...है तो आओ खुले आम लड़ते हैं। साले...सूअर...की... ।"

गोविंद की आँखे लाल सुर्ख हो गई थीं। उसकी कैंची ने अब और भी भयानक और रोद्र रूप धारण कर लिया था। उसने अपना गुस्सा मेरे बालों पर निकाल लिया था। जब मेरे बालों की कटिंग हो चुकी थी तब वह कुछ शांत-सा जान पड़ रहा था। उसने अपनी कैंची टेबल पर रख दी। मेरी आँखें लगातार उस कैंची को देखे जा रही थी वह कैंची नहीं मशीन गन थी। जिसने सारे दुश्मन बालों का खात्मा कर दिया था। हम जितनी बार सीमा पर दुश्मनों का खात्मा करते हैं, वह बेशर्मो की भांति उतनी ही बार अपना सर उठाते हुए दिखाई देता है। हमारे बाल भी तो ऐसे ही हैं।

गोविंद ने बताया वह भी कभी मिलट्री में था। उसने भी कई देश के दुश्मनों को धूल चटाया है। उसकी बन्दूक से निकलने वाली हर गोली ने दुश्मन का सफाया किया था। यही कारण था कि वह अपने मित्रों का प्रिय था। वह जितना रोबीला देशभक्त था उतना ही एक अच्छा पिता और प्रेमी हृदय वाला व्यक्ति भी था। जब बातों का सिलसिला चल पड़ा तो मैंने उनसे कईं बातें पूछी थी। गोविंद जवाब दे रहा था और मैं सुन रहा था। उसने कहा, "मेरी बीवी खुबसूरत थी जब मैं उसे देखने के लिया गया था तब उसने तुरंत हाँ कह दिया था।" जब मैंने उससे पूछा कि "मैं तो ऐसे कोयले से भी काला हूँ और तुम चाँद-सी खुबसूरत! फिर भी तुमने मुझे ही पसंद क्यों किया? तुम मुझे इनकार भी तो कर सकती थी। पर मुझे कैसे पसंद कर लिया?"

गोविंद ने कहा, उसका जवाब सुनकर मैं बेहद खुश हो गया था। उसने कहा था, "मैंने तुम्हारा रंग नहीं देखा था सीना देखा था। लोहे की तरह मजबूत और चौड़ा और मिलिट्री में हो। मेरे बचपन का सपना था कि मैं किसी मिलिट्री वाले देशभक्त के साथ विवाह करूँ। जो रात दिन जागकर हमारे देश की रक्षा दुश्मनों से करते हैं और हम उनके बल बूते पर निश्चित और चैन की नींद सो पाते हैं। आप हमारे रक्षक हो। मेरे लिए तुमसे बढ़कर और कौन सपनों का राजकुमार हो सकता है।"

इतना सुनना था कि गोविंद का सीना फुलकर और भी दुगुना हो गया था और उस दिन दुगुने सीने में उसने अपनी प्रिय पत्नी को सुरक्षित कर दिया था। गोविंद ने जब अपनी प्रिय पत्नी से पूछा, "विवाह के बाद सब जोड़े हनीमून के लिए कहीं

जाते हैं। बोलो मैं तुम्हें कहाँ लेकर जाऊँ।"

इस पर उसने कहा, "अगर मुझे हनीमून ले जाना चाहते हो तो मैं तुम्हें जहाँ कहूँगी, क्या तुम मुझे वहाँ लेकर जाओगे?"

"क्यों नहीं, माँगकर तो देखो। जो न ले गया तो फिर कहना।"

"तो फिर मुझे अपने साथ सीमा पर ले जाओ हनीमून के लिए। जहाँ बम गोलियाँ चलती हैं। सैनिक जहाँ सीने पर गोलियों के मैडल प्राप्त करते हैं। बोलो मुझे वहाँ लेकर जाओगे?"

गोविंद ने हँसते हुए कहा, "क्यों नहीं, तुम मेरी अर्धांगिनी हो, तुम जो कहो। मैंने जो वादा किया है, वह मैं निभाऊँगा। चलो कल ही निकल चलते हैं पर ठहरों। देवविधियाँ। अराध्य देव का आशीर्वाद प्राप्त करते हैं और फिर चलते हैं।"

"देश की सीमा से बढ़कर और कौन-सा मंदिर हो सकता है वहीं ईश्वर हैं। जहाँ हर रोज ईश्वर सैनिकों को अपना दर्शन दे जाते हैं और अपने साथ ले जाते हैं। चलो मुझे उसी ईश्वर के दर्शन करा देना। क्या तुम मुझे उस ईश्वर के दर्शन कराओगे?"

इस पर गर्व से सीना ताने गोविंद ने कहा, "क्यों नहीं, कल ही चलते हैं। चलो अपना सामान बाँध ले।"

गोविंद अपनी प्रिय पत्नी के साथ सीमा पर चला गया। जहाँ गोलियों आदि की आवाज नित गूँजा करती हैं। प्रत्येक गूँज पर वह ऐसे खुश होती जैसे कोई बालक खुश होता है। सच में ही गोविंद बड़ा भाग्यशाली था जो उसे इतनी अच्छी पत्नी मिली थी। जब वे घर लौटकर आये तब प्रिय पत्नी ने गोविंद के मस्तक को चूमा और इच्छा पूर्ति के लिए धन्यवाद कहा।

मेरे सिर के बाल कट जाने के बाद गोविंद ने मेरे कल्ले और गर्दन पर उग आये बालों को काटने के लिए ब्लेड को तोड़ कर उस्तरे में डाला और गर्दन के बालों को साफ करने लगा। उसने कब गर्दन के बाल और कल्ले साफ कर दिए पता ही नहीं चला था। मैंने कहा, गोविंद जी आपने मेरे गर्दन के बाल कब साफ कर दिए पता ही नहीं चला।"

इस पर गोविंद ने अपने अंदाज में कहा, "मैंने सीमा पर दुश्मनों के गर्दन संगीन से ऐसे साफ किये थे कि सामने वाले को पता ही नहीं चलता था कि कब वह नर्क में चला गया है।" गोविंद की हर बात चाल में सैनिक समाया हुआ था। वह देश का सच्चा सिपाही था। देशभक्त था।

विवाह के एक साल बाद ही गोविंद के घर एक खुबसूरत लड़की ने जन्म लिया। उसके आते ही उनकी जिन्दगी और भी खुशियों से भर गयी थी। उसकी हँसी, किलकारी घर आँगन में गूँजती। उसके पैरों की पायल बजती रहती गोविंद सीमा पर

जाने के बाद एक माह, दो माह में एक बार घर आ जाया करता था। समय बीतता गया। कब चौदह साल बीत गये पता ही नहीं चला। गोविंद इस बार छः महीने बाद छुट्टी लेकर घर आ रहा था। इस बार उसने पूरे एक माह की छुट्टी ली थी। तेरह साल की लड़की ने हमेशा अपने पापा को कहा था–

"पापा, आप हमसे इतने दूर क्यों रहते हो? यहाँ मैं और मम्मी ही रहते हैं। स्कूल में सब पूछते हैं तेरे पापा कहाँ हैं? तब मैं कह देती हूँ। मेरे पापा देश की सुरक्षा के लिए गए हैं। मेरे पापा देश की सुरक्षा करते हैं इसीलिए आप सब सुरक्षित हो। जब मेरे पापा छुट्टी लेकर आएँगे तो वे मुझे घूमाने के लिए लेकर जाएँगे।"

गोविंद भीतर से सोच रहा था कि वह घर कब पहुँचेगा और अपनी गुड़िया को कब अपने गले लगायेगा। गुड़िया से जब माँ ने पूछा था कि बेटा तू बड़ी होकर क्या बनेगी?" तब वह कह देती थी। "माँ मैं बड़ी होकर अपने पापा जैसे मिलट्री में जाऊँगी और देश के दुश्मनों से देश की रक्षा करूँगी।" जवाब सुनते ही गुड़िया की माँ खुश हो जाती और उसे अपने बाहों में भर लेती। माँ और गुड़िया अपने पिता गोविंद का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। इंतजार की घड़ी अब खत्म हो गई थी। गोविंद घर आ चुका था। उसने गुड़िया को उठा कर अपनी छाती से लगा लिया। और छः महीने के प्रेम को लुटाते हुए उसके माथे को चूमने लगा।

उसकी पत्नी पलंग पर लेटी थी। अब की बार वह दरवाजे पर स्वागत के लिए खड़ी नहीं थी। वह वहीं से मुस्कुरा रही थी। गोविंद को लगा की मैं छः महीने बाद लौट रहा हूँ शायद इसीलिए वह नाराज होगी। गोविंद उसके पास जाकर बैठ गया और पूछा, "कैसी हो? अब की बार मेरे स्वागत के लिए तुम दरवाजे पर नहीं खड़ी थी क्यों क्या हुआ? मैं छः महीने बाद आ रहा हूँ, इसीलिए न? पर क्या करूँ तुम्हें तो पता ही हैं न! हमारी नौकरी कैसी होती है पर अबकी बार मैं पूरे एक माह की छुट्टी लेकर आया हूँ और हाँ, अपना सामान पैक कर लेना। हम घूमने चलते हैं। खूब मौज करेंगे क्यों गुड़िया सही कहा न?"

गुड़िया खामोश थी उसने कुछ नहीं कहा चुप रही। गोविंद ने अपने कपड़े बदल कर फ्रेश होने के बाद, अपनी पत्नी से गरमा-गर्म चाय बनाने के लिये कहा पर वह वहीं बैठी मुस्कुरा रही थी। उसने कहा, "तुम छः महीने बाद आ रहे हो। मैं तुम पर नाराज हूँ। मुझे तुम्हारे हाथों की बनी चाय ही पीनी है और आज का खाना भी तुम्हीं ही बनाओंगे समझे। "प्यार भरी फटकार लगाते हुए उसने कहा था। गोविंद ने "जो हुक्म मेरे आका" कहते हुए उस दिन चाय बनाई और भोजन भी बनाया पर पत्नी का गुस्सा ठंडा नहीं हुआ था। उसने कहा, "तुम ही मुझे अपने हाथों से खिलाओ। मैं उठूँगी भी नहीं ऐसे ही लेटे-लेटे भोजन करूँगी। गोविंद ने अपनी पत्नी की इच्छा पूरी कर दी थी। आँगन में खिला गुलाब का फूल गोविंद तोड़ लाया। उसने भोजन

के बाद अपनी पत्नी को गुलाब का फूल देते हुए माफी माँगी पर उसने अपना हाथ हिलाया तक नहीं। गोविंद अब तक हल्के में ले रहा था। उसे लगा कि उसकी पत्नी उस पर नाराज है पर वह जान गया था कि माजरा कुछ और ही था। उसकी पत्नी को हाथ और पैरों का लकवा मार गया था। इसीलिए वह न चल सकती थी और न कुछ काम भी कर सकती थी। पिछली ही रात में उसे अचानक लकवा मार गया था। गुड़िया को भी उसने समझाया था कि अपने पापा को कुछ मत कहना। गोविंद यह सब कुछ देख कर सुनकर बेहद दुःखी हो गया था।

गोविंद ने डॉक्टर से ट्रीटमेंट ली थी। गोविंद रोज बिना चुके उसकी मालिश करता ताकि वह जल्दी से ठीक हो जाए। एक छुट्टियाँ अब खत्म होने को थी। एक और नौकरी तो दूसरी और पत्नी दोनों में से किसी एक का चयन उसे अब करना था। वह चला गया तो अपनी पत्नी की देखभाल कौन करेगा? उसकी और कौन ध्यान देगा? वह कशमकश में था। देश और पत्नी दोनों में से एक का चयन उसे करना था पर उसने सोच लिया चौदह साल मैंने देश की सेवा की है। अब जब मेरी पत्नी को मेरी जरूरत है, तब मुझे उसके लिए यहीं रूकना पड़ेगा वह विवश था। मजबूर था। उसके पास कोई उपाय नहीं था। उसके बस में होता तो वह देश की सुरक्षा के लिए निकल पड़ता पर अबकी उसने निर्णय ले लिया था। वह नौकरी छोड़ देगा। जब उसकी पत्नी ने यह बात सुनी तो उसने गोविंद को फटकार लगायी।" तुम मेरे लिए देश की सुरक्षा को त्याग रहे हो, मुझे यह बिलकुल पसंद नहीं है। इससे अच्छा होता कि मैं अपना शरीर त्याग दूँ। तुम इस शरीर के लिए यहाँ रुक रहे हो।" "गुड़िया की माँ तुम ही बताओ मैं तुम्हें इस हालत में छोड़ कर कैसे जाऊँ? किसके सहारे तुम्हें छोड़कर जाऊँ? आज जब यहाँ मेरी जरूरत है, तब तुम मुझे यहाँ से भेजना चाहती हो। आजतक मैं देश की सेवा पूरे तन-मन से कर रहा था। क्योंकि तुम मेरे पीछे खड़ी थी। तुमने मेरा हौसला बुलंद किया था, तुम मेरी शक्ति थी, हो पर आज मैं तुम्हें इस हालत में छोड़कर नहीं जा सकता। मुझे माफ कर देना और हाँ किसने कहा देश की सेवा मात्र सीमा पर ही जाकर की जा सकती है और भी कई मार्ग हैं, देश सेवा और सुरक्षा के। आज हर नागरिक अपनी जिम्मेदारी को समझें नियमों का पालन करें। देश में स्वच्छता रखे, भ्रष्टाचार रोके आदि कई माध्यमो से मैं देश की सेवा कर सकता हूँ। गोविंद गुड़िया की माँ को समझाने में कामयाब हो चुका था। समय बीत रहा था जीविका चलाने के लिए यहाँ रहकर कोई-न-कोई नौकरी या व्यवसाय करना था। सो उसने अपने हाथ में कैंची थाम ली और उसने कटिंग सलून का एक छोटा-सा व्यवसाय शुरू कर दिया था।

दो साल हो गये। पत्नी की हालत बहुत हद तक सुधर गई थी। गोविंद को अब लगा की सब कुछ ठीक हो गया है पर होनी को कुछ और ही मंजूर था। एक

रात वह उसे छोड़ कर भगवान के पास चली गई। गोविंद उस दिन बहुत रोया था। उस दिन वह शक्तिहीन हो चुका था। उसने महसूस किया कि जिन्दगी भी एक लड़ाई है। कई दुःख रूपी दुश्मन हमारे जिन्दगी में आते हैं, हमें उनका सामना करना पड़ता है। इसमें कभी हमें जीत मिलती है तो कभी हार। उस दिन वह जिन्दगी की एक लड़ाई हार चुका था। जिसने उसमें देशभक्ति के जज्बे को कूट-कूट कर भरा था। उसने बीच मझधार में ही उसका साथ छोड़ दिया था। अब उसके सामने अगली लड़ाई थी। एक हाथ में गुड़िया और दूसरे हाथ में कैंची। गुड़िया बड़ी हो रही थी अब वह पूरे बीस साल की हो गई थी। उसे गुड़िया के विवाह की चिंता सता रही थी तो गुड़िया अभी विवाह नहीं करना चाहती थी। उसे लगता था कि मेरे बाद मेरे पापा का खयाल कौन रखेगा पर उसका एक लक्ष्य था अपने पापा जैसे मिलट्री में जाना। उसने भर्ती में सहभाग लिया था। उसका परिणाम जल्द ही आनेवाला था।

एक दिन जब गोविंद सलून पर कैंची रूपी गन बालों पर चला रहा था। तब गुड़िया ने आकर बताया कि उसे सेना में नौकरी लग गई है। गोविंद अपने जीवन पर धन्य हो रहा था। उसे लगा कि वह फिर से सेना में भर्ती हो गया है। देश की रक्षा न कर पाने की उसके भीतर की टिस आज कम हो गई थी। वह अपनी देश सेवा और रक्षा अपनी बेटी के माध्यम से करने वाला था। उसने देश और पापा में से देश को स्वीकार करने के लिए गुड़िया को मना लिया था। उस दिन समाचार चैनल पर एक समाचार उसने सुना कि भारत ने बीती रात 'सर्जिकल स्ट्राइक' किया है। भारतीय सेना ने दुश्मन देश के घर में घुसकर आतंकियों का खात्मा कर दिया। उसकी कैंची खुशी से उछल पड़ी मानो इस 'सर्जिकल स्ट्राइक' को उसने ही अंजाम दिया हो और उसकी कैंची फिर से युद्ध के मैदान में लड़ने के लिए तैयार हो गयी थी। "कच-कच-कच-कच-कच-कच" कैंची।

प्यार का इंतजार

उस दिन तहसील किनवट के सरस्वती विद्यामंदिर महाविद्याल में गैदरिंग के लिए प्रैक्टिस चल रही थी। गोविंद महाविद्यालय के छात्र संसद का सचिव होने के कारण वह मंच पर बैठा था। मंच पर गोविंद के मित्र प्रतिभा और प्रभाकर मराठी गीत का अभ्यास कर रहे थे। प्रक्टिस में कई छात्र और छात्रायें नीचे बैठे थे। सहसा गोविंद की नजर एक लड़की पर पड़ी। वह अपनी सहेलियों से मुस्कराकर बातें कर रही थी। उसका वह मुस्कुराना गोविंद को भा गया था। गोविंद ने पहली बार उसे उस समय देखा था। उसे लगा कि हमारे कॉलेज में इतनी खुबसूरत लड़की है और मुझे पता तक नहीं। तीखी और सीधी नाक, धनुष्याकार भोंये, गुलाब की पंखुड़ियों से लाल और पतले होंठ, चाँद-सा खुबसूरत चेहरा कुल मिलाकर वह किसी के सपनों की राजकुमारी के समान थी।

गोविंद का अब तक गम्भीर चेहरा उसकी ओर देखकर मुस्कुराने लगा था। वह उसकी ओर तब तक देखता रहा था, जब तक वह उसकी ओर न देख लें। सहसा जब उसकी नजर गोविंद पर पड़ी, उसे देखता देख वह भी शरमाने लगी और शुरू हुई तब एक प्रेम कहानी। बात कुछ आगे बढ़ती कोच सर ने प्रैक्टिस खत्म होने की घोषणा कर दी। वह अपनी सहेलियों के साथ निकल पड़ी। गोविंद बेचैन था। उसके जाने के बाद उसे फिर से देखने का मन करने लगा था। उसने कॉलेज का गेट पार कर लिया था। गोविंद ने अपने मित्रों को पीछे छोड़ा और अपनी बी.एस.ए.एस.एल.आर साईकिल पर बैठ उसके पीछे निकल पड़ा। वह तब तक उसका पीछा करता रहा, जब तक कि उसके घर का पता उसे मिल न जाये। जब वह उसका पीछा कर रहा था, तब उसने एक बार जब मुड़कर देखा कि गोविंद उसका पीछा कर रहा है। गोविंद तो सकपका गया था पर उसने गोविंद की ओर देख कर मुस्कुराया और आगे चलते बनी।

उस दिन गोविंद ठीक से सो नहीं पाया था। रात भर वह उसके बारे में सोचता रहा था। दूसरे दिन वह कॉलेज के भीतर आने वाली सड़क पर अपने मित्रों के साथ उसका इंतजार करता हुआ खड़ा था। जब उसने अपनी सहेलियों के साथ कॉलेज के भीतर आनेवाली कच्ची सड़क पर कदम रखा वह उसे देखता रह गया था। जब उसकी सहेली ने उसे नाम से पुकारा 'मधुबाला'। तो गोविंद के हृदय में वह नाम अंकित हो गया था। प्रेम का सिलसिला चल पड़ा। कॉलेज, कॉलेज गार्डन, सड़क, कैंटीन, आदि। गोविंद उसे देखने के लिए हर रोज कोई-न-कोई बहाना बना उसके आसपास पहुँच ही जाया करता था। एक दिन जब उसने हिम्मत कर उसके सामने इजहार करने का प्रयास किया पर वह सफल नहीं हो पाया।

उसने एक खत उसके नाम लिखा। वह खत कविता की पंक्ति में था। उसने हिम्मत कर एक दिन जब वह घर पर अकेली थी, तब उसने उसके हाथों में वह चिठ्ठी थमा दी और चलता बना। उस दिन से वह कई दिनों तक उसके पास जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया था। वह उसकी 'ना' नहीं सुनना चाहता था। एक दिन उसने एक लड़के के हाथों चिठ्ठी भेजी। वह कहीं एकांत में गया और चिठ्ठी खोलकर देखा वह वही चिठ्ठी थी। जो गोविंद ने मधुबाला को दी थी और मधुबाला ने उसे वापस लौटा दिया था पर उसने जब गौर से देखा कि उसकी कविता की पंक्तियाँ बढ़ गई हैं। उसने अपना जवाब कविता से ही दिया था। लिखा था—'वह किसी और से प्रेम करती है।'

आठ साल बाद गोविंद और मधुबाला की मुलाकात नांदेड के स्वामी रामानंद तीर्थ विश्वविद्यालय में हुई थी। गोविंद अपने किसी काम से वहाँ गया था। तो मधुबाला मायग्रेष्ण टी.सी. निकालने के लिए अपनी सहेली के साथ आयी हुई थी। वह अब भी कुँवारी थी। उसे देख कर गोविंद की पुरानी यादें ताजा हो आयी थीं। गोविंद ने ग्रेज्युवेशन पूरा किया और अगली पढ़ायी के लिए उसे तहसील किनवट छोड़ना था। उसी वक्त ही उनके पिताजी का ट्रासफर नांदेड में हुआ था। मधुबाला को जब यह बात पता चली, तब उसने कई बार उससे मिलने की कोशिश की पर बात नहीं हो पायी थी। जब किनवट के शिवाजी चौक में गोविंद और मधुबाला आमने-सामने से गुजरने लगे थे। तब उसने उसे मुस्कुराते हुए हाथ दिखाया था। वह उस समय उसे कुछ कहना चाहती थी पर गोविंद सुनने की मानसिकता में नहीं था। मधुबाला की ना ने उसे निराश कर दिया था। गोविंद आगे चला गया। उसी दिन फिर से श्याम को तहसील के पास उसने फिर से हाथ दिखाया। गोविंद सोचने लगा कि अब हाथ क्यों दिखा रही है। जब हम कल नांदेड जा रहे हैं। अब क्या रहा है हमारे बीच वह तो किसी ओर से प्रेम करती है। जब गोविंद ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी तब उसकी आँखों में आँसू आ गये थे। लेकिन अब देर हो चुकी थी। वह

किनवट में और गोविंद नांदेड में रहने वाले थे। वह उनकी अंतिम भेंट थी।

"कैसे हो गोविंद? मुझे पहचाना।" मधुबाला ने गोविंद से कहा।

"हाँ, तुम्हें मैं कैसे भूल सकता हूँ। मैं ठीक हूँ।"

"तुम कैसी हो? और यहाँ कैसे आना किया?"

पुरानी यादें ताजा हो गईं। दोनों अब बड़े और समझदार हो गये थे। परिसर के एक वृक्ष के नीचे बैठे बातें करने लगे। उसने तब कहा, "तुम्हें पता है, उस दिन मैं तुम्हें क्यों हाथ दिखा रही थी। मैंने कई बार तुमसे मिलने की कोशिश की पर मिल नहीं पायी और जब हम आमने-सामने आए, तब तुमने भी मुझसे मुख मोड़ लिया था। मुझे पता था तुम मुझ पर नाराज थे क्योंकि मैंने खत में लिखा था कि मैं किसी ओर से प्रेम करती हूँ पर क्या तुम्हें यह पता है कि मैंने ऐसा क्यों लिखा था? क्योंकि मैं तुमसे सच्चा प्रेम करती थी। तुम्हारा बी.ए. का अंतिम वर्ष था। हमारे प्रेम के कारण तुम्हारा साल बर्बाद न हो इसलिए मैंने वह नाटक किया था। मैं तो तुम्हारे प्रेम में उसी दिन पड़ गई थी जिस दिन हमारी पहली मुलाकात गैदरिंग की प्रैक्टिस में हुई थी, पर मुझे क्या पता था कि यह सब कुछ हो जाएगा। मैं आज भी तुमसे प्रेम करती हूँ गोविंद। पापा ने कई बार मेरे लिए रिश्ता देखा पर मैं तुम्हारा इंतजार करती रही थी। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ।" और उसने गोविंद का हाथ पकड़ लिया और अपनी बाहों में लेने वाली थी कि गोविंद ने उसे रोक दिया। मधुबाला मैं भी तुमसे बहुत प्रेम करता था। आज भी करता हूँ...किन्तु अब मैंने किसी ओर से विवाह कर लिया है।